वैदिक साहित्य में विहित पौष्टिक कर्मों का आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु
प्रस्तुत

शोधप्रबन्ध

मार्गनिर्देशिका
डॉ० सुचित्रा मित्रा
प्रवक्ता

अनुसन्धाता
शीतला प्रसाद
एम० ए०
शीतला प्रसाद
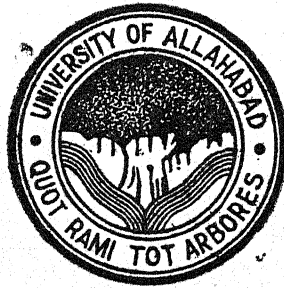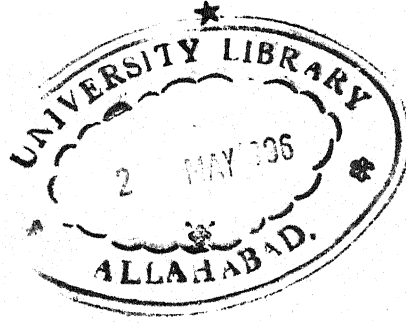
संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
१९९३ ई०

::: पुरोवाक् :::

"पुरोवाक्"

वेद भारतीय संस्कृति के आकर ग्रन्थ हैं । वेदों में समस्त पारलौकिक तथा जागतिक पदार्थों का मूल बीज सन्निहित है । समग्र ऐहिक, आमुष्मिक फल प्रदान करने वाले कृत्यों का मूल वेदों में ही प्राप्त होता है । वेद प्राचीनतम भारतीय संस्कृति के वर्णन में तद्युगीन मानवीय भावनाओं तथा तात्कालिक समाज में प्रचलित विविध परम्पराओं का भी सम्यग् विवेचन अपनी स्तुतियों एवं अन्य विधानों में प्रस्तुत करते है । पौष्टिक कर्म मानव को भौतिक समृद्धि प्रदान करने हेतु की गई संकल्पनाएं है । मानव को ऐहिक अथवा लौकिक सुख प्रदायक कर्मों में वैदिक पौष्टिक कर्म अद्वितीय है । सामान्यतया यह माना जाता है कि पौष्टिकादि कर्म अथर्ववेदीय साहित्य में ही प्राप्य है किन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। ऋग्वेद से लेकर सूत्र ग्रन्थों तक पौष्टिक कर्मों का अस्तित्व पाया जाता है । अन्तर केवल इतना है कि ऋग्वेद में यदि ये विधान बीज अवस्था में हैं तो यजुर्वेद में ये अङ्कुरित हो उठे हैं । सामवेद से लेकर अथर्ववेदीय साहित्य तक ये सम्यक् रूप से पुष्पित एवं पल्लवित हो गये हैं । किन्तु सम्प्रति कोई भी ऐसा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता जिसमें सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में विहित पौष्टिक कर्मों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया जा सके । इसी अभाव की पूर्ति हेतु विरचित यह शोध-प्रबन्ध वैदिक ज्ञान पिपासुओं तथा विविध पौष्टिक कर्मों के श्रद्धालुओं की जिज्ञासा का शमन करने में समर्थ हो सकेगा, ऐसी आशा है ।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है । इसके प्रथम अध्याय में वैदिक साहित्य में पौष्टिक कर्मों का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य प्रतिपादित है । द्वितीय अध्याय में विविध पौष्टिक कर्मों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

तृतीय अध्याय में वैदिक पौष्टिक एवं आभिचारिक कर्मों का अन्तः सम्बन्ध निरूपित करते हुए प्रमुख अभिचारों का परिचय भी दिया गया है । चतुर्थ अध्याय में पौष्टिक कर्मों के वैविध्य में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अनुशीलन किया गया है। पंचम अध्याय में पौष्टिक कर्मों का वैज्ञानिक आधार निरूपित किया गया है । षष्ठ अध्याय में पौष्टिक कर्मों की आधुनिक युगीन प्रासङ्गिकता पर विचार किया गया है। अन्त में उपसंहार प्रस्तुत करते समय पौष्टिक कर्मों में सन्निहित मानव कल्याण की भावना तथा पौष्टिक कर्मों में प्राप्त मानवीय आदर्शों का अनुशीलन किया गया है ।

इस शोध-प्रबन्ध के निबन्धन में जिनका परोक्षापरोक्ष रूप से सहयोग प्राप्त हुआ है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करके मैं हार्दिक सन्तोष का अनुभव करना चाहता हूँ। सर्वप्रथम इस शोध-प्रबन्ध की निर्देशिका पूज्या गुरुवर्या डा० सुचित्रा मित्रा के चरण कमलों में शिरसा प्रणाम करता हूँ जिन्होने अपने वैदुष्यपूर्ण एवं कुशल निर्देशों से इस शोध-प्रबन्ध को परिपूर्णता प्रदान की । गुरुवर्य विद्वद्वरेण्य डा० सुरेश चन्द्र पाण्डेय, विभागाध्यक्ष संस्कृत-विभाग, गुरुवर्य डा० हरिशंकर त्रिपाठी, रीडर, संस्कृत-विभाग तथा गुरुवर्य डा० चन्द्रभूषण मिश्र रीडर, संस्कृत-विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के चरण कमलों में हार्दिक प्रणामांजलियाँ निवेदित करता हूँ जिनके उत्साहपूर्ण शुभाशीर्वचनों से मै इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण कर सका । इसी के साथ सभी विभागिय गुरूजनों तथा प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर अब तक के सभी गुरूजनों को हार्दिक प्रणाम करता हूँ जिनकी प्रेरणाओं एवं आशीर्वचनों से मै इस योग्य बन सका ।

इस अवसर पर पूज्य पितृचरण पं० श्री ऋषीराम मिश्र एवं स्नेहवत्सला ममता की साक्षात् प्रतिमूर्ति पूज्या जननी श्रीमती जाम्बवन्ती मिश्रा के चरण कमलों में

भूयोभूय: शिरसा प्रणाम करता हूँ जिनके शुभाशीर्वाद व स्नेह के बल पर ही यह कार्य सम्भव हो सका । इसी प्रसंग में पूज्य पितृव्य श्री मनीराम मिश्र तथा पूज्य अग्रज श्री रमाकान्त मिश्र के चरण कमलों में हार्दिक प्रणाम समर्पित करता हूँ जिनकी प्रेरणा एवं सहयोगी भावना का प्रतिफल ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध है । प्रिय अनुज अजय कान्त मिश्र का उल्लेख भी अत्यन्त अपरिहार्य है जिन्होंने इस शोध प्रबन्ध के लेखन में अत्यन्त समर्पण भाव से प्रत्यक्ष सहायता की । इस अद्वितीय क्षण में सुहृदवर्य श्री बृजेन्द्रमणि त्रिपाठी, मुन्सिफ मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर का उल्लेख भी अत्यन्त समीचीन है जिनकी संगति मेरे लिए सदैव प्रेरणास्पद रही है । इस शोध-प्रबन्ध के लेखन एवं संयोजन में परोक्षापरोक्ष रूप से प्रेरित एवं प्रभावित करने वाले सुहृद्गण डा० दुर्गा प्रसाद त्रिपाठी, सहायक विकास अधिकारी (पंचायत) उ०प्र०, डा० शेषनाथ द्विवेदी, डा० शेष नारायण शुक्ल एवं श्री रामराज शुक्ल का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ ।

इस शोध प्रबन्ध के लेखन हेतु सामग्री संकलन में इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद के पुस्तकालयाधिकारी व कर्मचारी गण बन्दनीय व साधुवादार्ह हैं । जिन्होंने पुस्तकीय अभाव को पूरा करने में अपना सहयोग दिया । अन्त में उन विद्वान मनीषी लेखकों को हार्दिक प्रणाम निवेदित करता हूँ जिनकी रचनाओं से शोध सामग्री संकलन में सहायता प्राप्त हुई है ।

आशा है गुणग्राही विद्वान शोध-प्रबन्धगत त्रुटियों पर ध्यान न देकर अपने शुभाशीर्वचनों से हमें अनुगृहीत करेंगे ।

मार्गशीर्ष शुक्लाष्टमी
संवत् 2050

विदुषामनुवश:
शीतला प्रसाद

विषय-सूची

" वैदिक साहित्य में विहित पौष्टिक कर्मों का आलोचनात्मक अध्ययन

"शम्"

संकेत सूची

ऋ० सं०	ऋग्वेद संहिता
ऐ० ब्रा०	ऐतेरेय ब्राह्मण
अथर्व० वे० स०	अथर्ववेद संहिता
आ० सं०	आरण्यक संहिता
आश्व० श्रौ० सू०	आश्वलायन-श्रौतसूत्रम्
गो० ब्रा०	गोपथ ब्राह्मण
ता० ब्रा०	ताण्ड्य ब्रामण
कौ० गृ०	कौशिक गृहसूक्तम्
तैत्ति० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तैत्ति० स०	तैत्तिरीय संहिता
पञ्च० विं० ब्रा०	पंजविंश ब्राह्मण
माध्य० सं०	माध्यन्दिन वाजसनेयिसंहिता
मै० सं०	मैत्रायणी संहिता
श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
षड् विं ब्रा०	षडविंशी ब्राह्मण
सा० वे० सं०	साम वेद संहिता
सा० वि० ब्रा०	सामविधान ब्राह्मण
मन्त्र ब्रा०	मन्त्र ब्राह्मण
ऋ० भा० भू०	ऋग्वेद भाष्य भूमिका

‖ प्रथम अध्याय ‖

वैदिक साहित्य में पौष्टिक कर्मों का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

::: पृ०सं०-01- - -60:::

॥ प्रथम अध्याय ॥

वैदिक साहित्य में पौष्टिक कर्मों का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

वेद भारतीय संस्कृति के मूल आधार हैं । श्रौत परम्परा की आधारशिला पर ही भारतीय धर्म व सभ्यता का भव्य भवन सुप्रतिष्ठित है । श्रुति परम्परा पर आधारित होने के कारण ही वेदों को श्रुति, आम्नाय, आनुश्रव, श्रौतविद्या प्रभृति संज्ञाओं से जाना जाता है । इष्टप्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार के अलौकिक उपाय को बतलाने वाला ग्रन्थ वेद ही है[1]। वेद का वेदत्व इसी में है कि वह प्रत्यक्ष या अनुमान के द्वारा दुर्बोध तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान स्वयं कराता है -

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ।।

वेद अपौरुषेय है । ऋषि मन्त्रों के कर्ता न होकर द्रष्टा है - ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः ।

1- सायण कृत ऋ०भा०भू० -
"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः ।"

भारतीय परम्परा वेदों को अनाद्य अनन्त मानते हुए अपौरुषेय ही मानती है । आचार्य यास्क ने भी निरुक्त में स्पष्ट रूप कहा है - साक्षात्कृतधर्माण ऋषयोबभूवुः, अपने प्रातिभ चक्षु के माध्यम से साक्षात्कृत-धर्मा ऋषियों के द्वारा अनुभूत अध्यात्मशास्त्र के तत्वों की त्रिकाल विमल राशि का ही नाम "वेद" है । लौकिक वस्तुओं के साक्षात्कार हेतु जिस प्रकार नेत्र की उपयोगिता है उसी प्रकार अलौकिक तत्वों के रहस्य के परिज्ञान के लिए वेद उपादेय है । वेद की प्रामाणिकता में विश्वास रखने वाले आस्तिक तथा वेद-प्रामाण्य में अविश्वास रखने वाले नास्तिक कहे जाते हैं । शतपथ ब्राह्मण का स्पष्ट कथन है कि धन से परिपूर्ण पृथ्वी के दान करने से जितना फल होता है वेदाध्ययन से उससे भी बढ़कर फल प्राप्त होता है -

"यावन्तं ह वै इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णां ददत् लोकं जयति, त्रिभिस्तावन्तं जयति, भूयांसं च अक्षय्यं च य एवं विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते, तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ।" शत० ब्रा० ।।·5·6·। ।।

वेदज्ञ की प्रशंसा में महर्षि मनु ने कहा है कि वेदशास्त्र के तत्व को जानने वाला व्यक्ति जिस किसी आश्रम में निवास करता हुआ कार्य का सम्पादन करता है वह इसी लोक में रहते हुए ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है -

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

महाभाष्यकार पतन्जलि ने भी वेदाध्ययन की महत्ता का प्रतिपादन किया है । उनके अनुसार षडङ्ग वेद का अध्ययन तथा ज्ञान प्रत्येक ब्राह्मण का सहज कर्म होना चाहिए -

"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मो षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च ।"

वेद न केवल आध्यात्मिक धार्मिक दार्शनिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है प्रत्युत: सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से तात्कालिक भौगोलिक परिदृश्य भी झलक उठता है । वेद मन्त्रों, ब्राह्मणों आरण्यको, उपनिषदों व सूत्रग्रन्थों में अनेक पर्वतो नदियों एवं स्थानों का उल्लेख मिलता है । जिनको समन्वित करके वैदिक भूगोल की रूपरेखा तैयार की जा सकती है । इस प्रकार वेदों के चिर परिचित धार्मिक व सांस्कृतिक महत्व के साथ-साथ कहा जा सकता है। कि भौगोलिक दृष्टि से भी वेदों का महत्व न्यून नहीं है ।

वैदिक वाङ्मय अत्यन्त विशाल है । संहिता "ब्राह्मण-आरण्यक, उपनिषद वेद के चार भाग हैं । वस्तुत: इन्हीं की संज्ञा वेद है । जैसा कि आपस्तम्ब ने "यज्ञ परिभाषा" में वेद का लक्षण इस प्रकार दिया है-

"मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।"[1]

1- आप० परि० 31 ।

वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इनकी अनेक संहिताएं हैं। वस्तुतः मन्त्रों के समूह का नाम संहिता है। याज्ञिक अनुष्ठानों को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न ऋत्विजों के उपयोग के लिए इन मन्त्र संहिताओं का संकलन किया गया है। इस संकलन का श्रेय महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास को प्राप्त है। जैसा कि दुर्गाचार्य ने वेदों के विभाजन के सम्बन्ध में कहा है -

"वेद तावदेकं सन्तमतिमहत्वात् दुरध्येयमनेकशाखा भेदेन समाम्नासिषुः। सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नावन्तः"। दुर्गाचार्य निरुक्तवृत्तिः 1.20।

संहिताओं में विहित पौष्टिक कर्म

वेद मन्त्रों के समूह का नाम संहिता है। याज्ञिक अनुष्ठानों को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न ऋत्विजों के उपयोग के लिए इन मन्त्रसंहिताओं का संकलन किया गया है। इस संकलन का कार्य स्वयं वेद व्यास जी ने किया। कृष्ण द्वैपायन को वेदों के इसी व्यास अर्थात् पृथक्करण करने के कारण वेदव्यास" की संज्ञा प्राप्त हुई है -

"वेदान् विव्यास यस्मात् स वेदव्यास इति स्मृतः।[1]

1- द्र0 महाभारत।

मन्त्र संहिताएं चार हैं - ऋग्वेद संहिता यजुर्वेद संहिता, सामसंहिता और अथर्व संहिता । इन चारों संहिताओं या वेदों की अलग-अलग अनेक संहिताएं है । ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के संकलन का सम्बन्ध याज्ञिक अनुष्ठानों के साथ साक्षात् रूप से नहीं था, परन्तु अन्य दो संहिताओं साम संहिता तथा यजुष संहिता का निर्माण यज्ञ-यागादि के विधानों को लक्ष्य करके ही किया गया है ।

संहिताओं में पौष्टिक कर्मों का स्पष्ट विधान तो नहीं मिलता किन्तु इनके मन्त्रों में इस कर्म का स्पष्ट आभास मिलता है ।

ऋग्वेद संहिता में प्रतिपादित पौष्टिक कर्म

चारों वेदों में ऋग्वेद का महत्त्व अन्यतम है । अन्य वेदों से ऋग्वेद नितान्त प्राचीन और उपयोगी माना जाता है । इसकी पूजनीयता तथा आधमर्ण्यता सर्वत्र स्वीकार की जाती है । तैत्तिरीय संहिता[1] के अनुसार साम तथा यजुः के द्वारा जो विधान किया जाता है वह शिथिल होता है, परन्तु ऋक् द्वारा विहित अनुष्ठान ही दृढ़ होता है ।

1- तै० सं० 6·5·10·3

"यद् वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद्
यद् ऋचा तद् दृढमिति ।। " तै० सं० 6·5·10·3 ।।

पुरुषसूक्त[1] में ऋचाओं का ही आविर्भाव सबसे पहले माना गया है -

"तस्माद् यज्ञाद् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।

ऋग्वेद का दो क्रमों में विभाजन उपलब्ध है {I} अष्टक क्रम तथा {II} मण्डल क्रम । प्रथम में 8 अष्टक तथा प्रत्येक अष्टक में 8 अध्याय हैं । कुल 64 अध्याय तथा 2006 वर्ग हैं । द्वितीय लोकप्रिय विभाजन 10 मण्डलों में है । इसमें कुल 85 अनुवाक् तथा 1017 सूक्त हैं । 11 सूक्त बालखिल्य है । ऋग्वेद की मुख्यतः 5 शाखायें हैं शाकल बाष्कल, आश्वलायन शांखायन तथा माण्डूकायन । आजकल उपलब्ध संहिता शाकल ही है ।

ऋग्वेद धार्मिक स्तोत्रों की विशाल राशि है जिसमें नाना देवताओं की विभिन्न ऋषियों ने बड़े ही सुन्दर तथा भावाभिव्यञ्जक शब्दों में स्तुतियाँ एवं अपने अभीष्ट की सिद्धि के निमित्त प्रार्थनायें की हैं । यद्यपि ऋग्वेद में देवस्तुतियों की बहुलता होने के कारण इसे याज्ञिक दृष्टि से होता नामक ऋत्विज् का वेद माना जाता है तथापि ऐतिहासिक दृष्टि से उसके

1- ऋ० 10·90

अनेक सूक्त विकसित यज्ञ विधान के सम्पूर्ण नियमों से पूर्वकालिक है । ऋग्वेद में इन सबके अतिरिक्त यातु विषयक सामग्री विशेषतः पुष्टि विषयक सामग्री भी प्राप्त होती है । इन पुष्टि विषयक मन्त्रों में ऋषियों तथा पुरोहितों का देवताओं के प्रति समर्पण भाव परिलक्षित होता है । ऋग्वेदीय पुरोहितों का विश्वास था कि दिव्य शक्तियों की प्रार्थना करके उनका अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है । यह विश्वास उनमें दृढ़ इच्छा शक्ति उत्पन्न करता है । तथा वे अपना कोई भी कार्य सम्पादित करने में पर्याप्त समर्थ प्रतीत होते हैं । इस तथ्य का दर्शन ऋग्वेद के अधोलिखित मन्त्र में प्राप्त होता है - "महोरुजामि बन्धुता वचोभिः तन्मा पितुर्गोतमादन्विमाय ।"[1]
ऋग्वेद के अनुशीलन से स्पष्ट होता है । कि इस वेद में भी पुष्टिकर्म सम्बन्धी सामग्री उसी प्रकार की है जिस प्रकार अथर्व वेदादि में प्राप्त होती है । प्रमुख ऋग्वेदी में पुष्टि विषयक सामग्री का अध्ययन निम्नवत् किया जा सकता है -

रोग मुक्ति तथा स्वास्थ्य लाभ सम्बन्धी पुष्टि कर्म

ऋग्वेद में रोगमुक्ति सम्बन्धी अनेक स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं । अनेक मन्त्रों में विविध देवताओं का स्तवन रोगों को दूर करने के लिए किया गया है । जैसे कि सूर्य को हृदय रोग और पाण्डुरोग दूर करने वाला

कहा गया है ।[1] एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि सूर्य पाण्डुता को शुकों सारिकाओं तथा हरिद्रा वृक्षों आदि में स्थापित करता है इसी के आगे वाले मन्त्र में कहा गया है कि आदित्य देवता शत्रु को उसके वश में कर देता है जो उसकी शत्रु रक्षा हेतु प्रार्थना करता है -

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं दध्मसि ।।
उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् ।।[2]

वह रोग जिससे रोगी का शरीर हरा- हरा हो जाता है तोते पेड़ आदि हरी वनस्पतियों में ही रहे । अर्थात् वे मनुष्यों को कष्ट न दें । इस प्रकार मनुष्य स्वस्थ होकर अपने से द्वेष करने वाले शत्रुओं पर अधिकार करता रहे । वह कभी भी अपने शत्रुओं के अधिकार में न आवे । ये शत्रु रोगों के जन्तु हैं जो अवसर पाकर मनुष्य को आक्रान्त करते हैं । किन्तु जिस पर सूर्य की कृपा दृष्टि रहती है । वह कभी भी इनके अधिकारमें नहीं आता ।

1- ऋ0 1·50 ।।

2- ऋ0 1·50 12-13

यातु विषयक क्रियाओं में रोग दूर करने का भाव जड़-चेतन सभी में व्यापक रूप से प्राप्त होता है । इस विषय में ऋषि न केवल देवताओं में अपितु अपनी क्रियाओं में भी विश्वास करते हैं । ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त[1] को इन्हीं विशिष्ट भावों के कारण आचार्य सायण ने "विषनिर्हरणयुपनिषद" के नाम से अभिहित किया है । इसमें उन्होंने बताया है कि इस सूक्त के द्रष्टा ऋषि महर्षि अगस्त्य ने विषाक्रान्त होने पर विषधर कीटों के विनाश के लिए इस सूक्त के मंत्रों का दर्शन किया था । एक अन्य सूक्त[2] में मित्रावरुण, विश्वेदेवा तथा नदियाँ विष निवारण तथा रोगदूरीकरण हेतु स्तुत की गई हैं । ऋग्वेद का एक दूसरा सूक्त[3] परम्परया ज्वर चिकित्सा हेतु प्रयुक्त किया जाता है । इससे स्पष्ट होता है कि ऋषिगण मन्त्रों के साथ औषधियों का प्रयोग करते हुए औषधियों के प्रयोग से चिकित्सा कार्य सम्पादित करते थे तथा पारिश्रमिक के रूप में पशुवस्त्र, धन आदि प्राप्त करते थे । ऋग्वेदीय एक अन्य सूक्त रोग दूर करने तथा स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए विहित है । इस सूक्त के मंत्रों में देवगण तथा वायुपतितों का उद्धार करने तथा उन्हें नीरोग करने के लिए स्तुत किये गये हैं । इसी सूक्त के अन्य मन्त्रों में मरुद्गणों तथा जलदेवताओं को रोग दूर करने हेतु

1- ऋग्वेद 10/16 द्र0 सायण भाष्य

2- ऋग्वेद 7/50

3- ऋ0 10/97

प्रार्थना की गई है । एक अन्य मन्त्र में पीड़ा के शमन हेतु हस्त स्पर्श क्रिया का वर्णन किया गया है -

"हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ।।"[1]

ऋग्वेद के एक सूक्त[2] को क्षयरोग दूर करने में समर्थ बताया गया है । इसमें ऋषि अपने द्वारा प्रदान की गई हविष् की शक्ति से यक्ष्मा रोग का नाश करता है । अतः स्पष्ट होता है कि रोगों के उन्मूलन में ऋषियों तथा देवताओं का संयुक्त प्रयास होता था । ऋषि अपनी शक्तियों पर विश्वास करते हुए भी देवताओं का आश्रय लेकर रोगापनयन का उद्योग करते थे ।

वृष्टि सम्बन्धी पुष्टि कर्म -

ऋग्वेद का मण्डूकसूक्त[3] मण्डूकों की स्तुति उनकी क्रियाओं एवं स्वभाव का चित्ताकर्षक वर्णन प्रस्तुत करता है । इससे निः स्पष्ट होता

1- ऋ0 10/137/7

2- ऋ0 10/161

3- ऋ0 7/103

है कि वैदिक ऋषि अत्यन्त सावधानी से चतुर्दिक प्रकृति का निरीक्षण करते थे । इसमें वर्षाकाल के आरम्भ में मण्डूकों की टरं टरं ध्वनि की तुलना वेदपाठी ब्राह्मणों से की गई है । इसके अन्त में मण्डूकों का वर्णन धन, गौ, दीर्घायु प्रदान करने वाले उदारदाता के रूप में किया गया है । "आचार्य सायण के अनुसार इस सूक्त का पाठ वर्षा चाहने वाले लोगों द्वारा किया जाना चाहिए । मैक्समूलर के अनुसार यह पुरोहितों पर एक व्यङ्ग्य है । के० आर० पोद्दार महोदय के अनुसार इस सूक्त में मण्डूक रूपदेवताओं की स्तुति की गई है.[1] । एक अन्य सूक्त में वृष्टि हेतु देवापि शान्तनु का आख्यान उपस्थापित किया गया है । इस सूक्त[2] में देवापि अपने छोटे भाई शान्तनु के लिए वृष्टि याग में पौरोहित्य कर्म करता है । इसके मंत्रों में वृष्टि को आकर्षित करने की देवापि की सफलताओं का वर्णन प्राप्त होता है । ये मंत्र अपने सन्दर्भ से अलग कर देने पर यातु सम्बन्धी प्रतीत होते हैं किन्तु यदि इन मंत्रों का अध्ययन पूर्ण सूक्त के सन्दर्भ को लेकर किया जाय तो ज्ञात होता है कि देवापि मित्र वरुण आदि देवताओं के साथ बृहस्पति को पर्जन्य द्वारा वृष्टि कराने हेतु उस प्रकार की वाणी प्रदान करने हेतु प्रार्थना करता है, जिससे वृष्टि सम्भव हो सके । इस सूक्त के द्वितीय मंत्र में बृहस्पति

1- द्र० अथर्ववेदे शान्तिपुष्टकर्माणि -डा० माया मालवीया पृ० 27

2- ऋ० 3/53

स्पष्टरूप से कहते हैं कि वह उसके अर्थात् देवापि के मुख में एक दीप्तिमती वाणी स्थापित करते हैं । अन्य मंत्रों में बृहस्पति की प्रार्थना वृष्टि याग के होता के रूप में की गई है । इसी सूक्त के 8,9,10 मंत्रों में हवि ग्रहण करने के लिए वृष्टि और अग्नि की मार्मिक स्तुति की गई है तथा अन्त में शत्रुओं, रोगों, कष्टों तथा राक्षसों को दूर करने के लिए वृष्टि की प्रार्थना की गई है ।

कृषि सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

ऋग्वेदीय[1] मंत्रों में क्षेत्रपति, शुनः शुनासीर तथा सीता आदि कृषि के अङ्गभूत उपकरणों में चेतनत्व का आरोप करके उनके द्वारा पूषा इन्द्र पर्जन्य आदि की प्रार्थना कृषि की सफलता कल्याण तथा समृद्धि हेतु की गई है । इस सूक्त के चौथे तथा आठवें मंत्रों की प्रारम्भिक पङ्क्तियों में स्पष्ट रूप से वृष्टि को प्रभावित करने का प्रयत्न परिलक्षित होता है ।

भय, दुर्भाग्य अपशकुनादि सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

ऋग्वेद में घर के सभी सदस्यों को सुलाने के अनेक मंत्र प्राप्त होते हैं जिससे प्रेमी अपनी प्रेमिका से शान्तिपूर्वक निर्बाध रूप से मिलने

1- ऋ0 - 4/57

में समर्थ हो सके । इस सूक्त[1] के विषय में आचार्य सायण ने दो कथाओं को उद्धृत किया है । प्रथम कथा के अनुसार वशिष्ठ ऋषि जब रात्रि में वरुण के घर सोने जाते थे तब इस सूक्त के पाठ से भौंकते हुए कुत्तों को सुला देते थे । दूसरी कथा के अनुसार वशिष्ठ भूख से पीड़ित होकर जब वरुण के घर धन चुराने गये तो उन्होंने सभी रक्षा पुरुषों को इस सूक्त के पाठ से सुला दिया । इसके अनुसार ही इस सूक्त का पाठ चोरों अथवा सन्धि भेदकों द्वारा किया जाता है । इस प्रकार इन मंत्रों से किसी को भी सुलाकर समृद्धि प्राप्त करने की कामना की गई है ।

ऋग्वेदीय मंत्रों में मृत्युतुल्य प्रतीयमान मूर्च्छा आदि के समय चेतनता लाने हेतु कामना प्रकट की गई है । मन, यम स्वर्ग, पृथ्वी आदि चारों दिशाओं व चेतन अचेतन पदार्थों में गम्यमान है । ऋग्वेदीय सूक्तों[2] का पाठ करने से मृत व्यक्ति का भी जीवन वापस किया जा सकता है । ऋग्वेदीय मंत्रों का पाठ अपशकुनों के निवारणार्थ प्रयुक्त होते हैं । इन मंत्रों में विवृत है कि कपिन्जल आदि पक्षियों की प्रिय ध्वनि सुनकर अपशकुन नष्ट हो जाते हैं । एक अन्य मंत्र में समाचार तथा सुरक्षा प्राप्ति हेतु

1- ऋ0- 7/55

2- ऋ0 10/59 एवं 10/60

3- ऋ0 2/42-43 आदि

दक्षिणाभिमुख विलाप करते हुए पक्षी की प्रार्थना की गई है । अन्य मंत्र में समृद्धि और सौभाग्य प्राप्त करने के लिए पक्षियों की अभ्यर्थना की गई है ।

ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त[1] का प्रयोग दुःस्वप्नों तथा दुष्परिणामों के विनाश के लिए किया गया है । ऋषि दुःस्वप्नों तथा उनके दुष्परिणामों को दूर करने की इच्छा करता है । वह दुःस्वप्नों की प्रार्थना करता है तथा दैवी सहायता प्राप्त करने की इच्छा करता है -

"अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आचक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ।।[2]

अपशकुन कारक पक्षियों के आगमन से उत्पन्न दुष्परिणामों के निराकरण हेतु की गई प्रार्थना में कपोत, उलूक आदि पक्षियों की अभ्यर्थना की गई है ।[3] अग्नि, सभी देवताओं और यम की प्रार्थना करते हुए ऋषि का कथन है कि वे उसकी आहुति से प्रसन्न होकर ऐसे अपशकुन कारक पक्षियों से दूर करें तथा उनके आगमन से परिवार की तथा पशुओं की कोई हानि न होवे तथा अन्न, धन, पशु आदि की प्राप्ति हो ।

दुर्भाग्य निराकरण हेतु भी ऋग्वेद के अनेक मंत्र प्रयुक्त है । एक मंत्र में वक्ता क्रूर दुष्टात्मा राक्षसी को पर्वत के उस पार जाने का आदेश दिया गया है । ऋषि उसे विशिष्ट शक्ति से दूर करता है ।

~~उसे दूर~~--

उसे दूर करने हेतु बृहस्पति की प्रार्थना की गई है तथा उसे नदी में केवट विहीन नौका पर बैठकर दूर जाने के लिए कहा गया है -

"अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ।।
अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः अपूरुषम् ।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ।।"[1]

स्त्रीकर्म सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

ऋग्वेद में स्त्रियों से सम्बद्ध अनेक पौष्टिक कर्मों का विधान प्राप्त होता है । सुरक्षित प्रजनन हेतु प्राप्त मन्त्रों को आचार्य सायण ने "गर्भस्रावियुपनिषद्"[2] के नाम से अभिहित किया है । इस सूक्त के मंत्रों[3] में 10 मास के शिशु की जीवित अवस्था में सुरक्षित उत्पत्ति वर्णित है -

"यथा वातः पुष्करिणीम् समिङ्गयति सर्वतः ।
एवाते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ।।"[4]

1- ऋ0 10/155/2-3

2- ऋ0 5/78

3- ऋ0 5/78/7-9

ऋग्वेदीय सूक्तों में सपत्नियों से मुक्ति हेतु यातिक मंत्र प्राप्त होते हैं । ये मंत्र अत्यन्त प्रभावशाली एक देवप्रेरित औषधि को उखाड़ने का निर्देश करते हैं जिससे स्त्री अपनी सौतों पर विजय पाकर दूर भगा देती है तथा पति पर एकाधिकार प्राप्त कर लेती है । इस सूक्त पर यातु का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

ऋग्वेद में गर्भपात निवारण हेतु भी मन्त्र प्रयुक्त हैं । इन मन्त्रों[1] रक्षोहा अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह गर्भ तथा योनि के दोषों को दूर करे । जो दुष्टात्माएं विविध प्रकार से स्त्रीगर्भ को बाधित करती है । उनके विनाश की प्रार्थना भी प्राप्त होती है -

"यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ।।"[2]

शत्रु विद्वेष सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

ऋग्वेदीय सूक्तों में शत्रु विनाश सम्बन्धी अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं । ऋग्वेद के एक सूक्त[3] में वशिष्ठ के प्रति शापों का वर्णन प्राप्त

1- ऋ0 10/162/1-2

2- ऋ0 10/162/3

3- ऋ0 3/53

होता है । इस सूक्त के द्रष्टा विश्वामित्र हैं जो अपने शत्रुओं के विनाश के लिए इन्द्र से सहायता की याचना करते हैं । इस सूक्त में शाप हेतु प्रयुक्त शब्द अत्यन्त क्रोधपूर्ण एवं कुवाच्य है जो आज भी अत्यन्त नीच लोगों द्वारा प्रयुक्त किये जाते हैं । उदाहरणार्थ एक मन्त्र द्रष्टव्य है -

"अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ।।"[1]

इसी सूक्त के एक मंत्र[2] में उलूक कुक्कुर गृध्र रूप में विचरण करने वाले प्रत्येक स्त्री पुरुषों पिशाचों और दुरात्माओं के विनाश के लिए विभिन्न देवताओं का आवाहन किया गया है । एक अन्य सूक्त में शत्रुनाश हेतु इन्द्र की प्रार्थना करते हुए द्रष्टा ऋषि स्वयं को इन्द्र की भाँति शत्रुओं का विनाशक और बन्धकर्ता बताता है तथा अन्त में पराजित शत्रुओं को आदेश देता है कि वे अपने पैरों के नीचे अवस्थित नीचे उसी प्रकार चले जायें जिस प्रकार मेढक जल में समाहित हो जाते हैं और बोलते रहते हैं ।[3]

1- ऋ० 7/104/15

2- ऋ० 7/104/ 22

3- द्र० ऋ० 10/166/2,3,5

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेदीय संहिता में पौष्टिक कर्म सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री विद्यमान है ।

यजुर्वेद में पौष्टिक कर्म -

यजुर्वेद में अध्वर्यु पुरोहित हेतु उपादेय यजुषों का सङ्ग्रह है । "अनियताक्षरा वसानो यजुः" "गद्यात्मको यजुः" "शेषे यजुः शब्दः" प्रभृति यजुष् शब्द की परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि ऋक् तथा साम से भिन्न गद्यात्मक मंत्रों का ही नाम यजुः है । यजुर्वेद दो प्रकार का है प्रथम ब्रह्म सम्प्रदाय का प्रतिनिधिभूत कृष्ण यजुर्वेद तथा द्वितीय आदित्य सम्प्रदाय का प्रतिनिधिभूत शुक्ल यजुर्वेद । महाभाष्यकार पतन्जलि के अनुसार यजुर्वेद की 101 शाखाएं हैं - "एकशतमध्वर्यु शाखाः"[1] किन्तु सम्प्रति सभी शाखाएं उपलब्ध नहीं हैं । कृष्ण यजुर्वेद की 4 तैत्तिरीय मैत्रायणी, कठ कपिष्ठल कठ तथा शुक्ल यजुर्वेद की 2 - माध्यन्दिन व काण्व शाखाएं उपलब्ध हैं । यजुर्वेदीय संहिताओं में प्राप्त पौष्टिक कर्मों का विवेचन अधोलिखित रूप में किया जा सकता है -

---

1- द्र० महाभाष्य पशपशाह्निक

कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताओं में पौष्टिक कर्म -

अन्य वैदिक संहिताओं की भांति कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताओं में भी क्रियाओं एवं याज्ञिक विधानों का प्राचुर्य प्राप्त होता है । पुरोहितों का समूह उन्हीं विविध क्रियाओं का सम्पादन करताहै । जिनका प्रत्येक का प्रतीकात्मक अर्थ यजमान को लाभ पहुँचाना होता है । उदाहरणार्थ दर्शपूर्ण-मासयाग में दुग्ध की हवि प्रदान करने के लिए पुरोहित पलाश की एक कोमल शाखा को काटता है और उससे के बछड़े को बांधता है जिससे गाय सम्यक् रूप से दुही जा सके अन्यथा माता के साथ उस बछड़े के जाने पर सायंकाल दूध नहीं मिल सकता । यहाँ पर शमी अथवा पलाश की शाखा से बछड़ेको बांधना मुख्य उद्देश्य नहीं है प्रत्युत यजमान की ओजस्विता व प्राणवत्ता का प्रतीकात्मक प्रकटीकरण मुख्य उद्देश्य है । कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताओं में समृद्धि, सन्तति, पशु, वृष्टि, फसल, ग्राम, सुवर्ण और घर सभी की वृद्धि और साथ-साथ उपलब्धि के कृत्यों का वर्णन प्राप्त होता है । तैत्तिरीय संहिता में ऋद्धि प्राप्ति हेतु स्पष्ट रूप से कहा गया है " यह पराचीनं पुनराधेयादग्नि मादधीत स एतान् होमान् जुहुयाद्यामेवादित्या ऋद्धि मार्धुवन् तामेवाध्नोति।"[1]

1- तैत्ति० सं० 1/5/4/4

समृद्धि सम्बन्धी पौष्टिक कर्म-

तैत्तिरीय संहिता में काम्येष्टि में वायु देवता को उद्दिष्ट करके श्वेत पशु का समर्पण करने से समृद्धि प्राप्ति बताई गई है - "वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामो वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवता वायुमेव स्वेनभागधेयेनोपधावति स एवैनं भूतिं गमयति ।[1]

इसी प्रकार अन्य अनेक स्थलों पर देवताओं के प्रति चित्याभिमर्षण तथा बन्ध्यागौ के आलम्भन आदि प्रयोगों के द्वारा समृद्धि प्राप्ति के उपाय बताए गये हैं ।

सन्तति प्राप्ति सम्बन्धी पुष्टिकर्म -

कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताओं में अनेक स्थलों पर सन्तति प्राप्ति सम्बन्धी पुष्टि कर्मों का विधान प्राप्त होता है । यथा- तैत्तिरीय संहिता के एक स्थल पर अग्नि की उपासना के प्रसङ्ग में बताया गया है कि अग्नि देवता सम्बन्धी मन्त्रों का पाठ करने से सन्तान हीन व्यक्ति तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस युक्त पुत्र प्राप्ति करता है - "तन्त्वे ज्योतिष्मतीमिति ब्रूयाद यस्य पुत्रोऽजातः स्यात् तेजस्व्येवास्य ब्रह्मवर्चसी पुत्रो जायते ।[2]

1- तैत्ति0 सं0 2/1/1/1/1

इसी प्रकार उपर्युक्त मंत्रों के उच्चारण से व्यक्ति शीघ्र ही अपना अभीप्सित प्राप्त करता है। अन्य स्थलों[1] पर कहा गया है कि सन्ततिकामी व्यक्ति को सोम के लिए कपिशवर्ण तथा अग्नि के लिए कृष्णग्रीवा वाले पशु का आलम्बन करना चाहिए। इस प्रकार सोमवीर्य प्रदान करता है तथा अग्नि सन्तति देता है।

पशु सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताओं में अनेक स्थलों पर पशु प्राप्ति सम्बन्धी प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं। अग्नि को अष्टाकपाल पुरोडाश और इन्द्र को एकादश कपाल पुरोडाश प्रदान करने से पशु प्राप्ति बताई गई है। साथ ही पशुओं को विविध रूपों वाला बताया गया है - "दधि मधुघृतमापो-धाना भवन्त्येतद्वै पशूनां रूपम्। ------बहु रूपाहि पशवः।"[2]

उपर्युक्त पौष्ठिक कर्मों के अतिरिक्त सन्तति और पशु साथ-साथ प्राप्त करने के अनेक विधान कृष्णयजुर्वेदीय संहिताओं में प्राप्त होते हैं।[3]

1- तैत्ति० सं० -2/1/2/7-8

2- तैत्ति०सं० 2/3/2/8

अन्न प्राप्ति सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताओं में साजप्रसवीय होम मुकयजनन प्रयोग तथा अग्नि चयन प्रसङ्गों में प्रभूत अन्न प्राप्ति के अनेक प्रयोग वर्णित हैं । यथा- अग्नि चयन के प्रसङ्ग में प्रयुक्त पात्रों को अन्न का प्रतीक बताया गया है -

"पात्राणि भवन्ति पात्रे वा अन्नमद्यते स योन्येवान्नमव-रुन्धे आद्घादशात पुरुषादन्नमत्त्यथो पात्रान्नम् छिद्यते यस्यैता उपधीयन्ते ।"[1]

वृष्टि सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

वैदिक युग में कृषि अधिकांशतः वृष्टि पर आश्रित होती थी । यही कारण है कि कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताओं में काम्येष्टियों के प्रसङ्ग में वृष्टि प्राप्ति सम्बन्धी पौष्टिक कर्मों का स्पष्ट विधान प्राप्त होता है । यथा काम्येष्टि के एक प्रसङ्ग[2] में प्रजापति को काला बताते हुए अतिवृष्टि को रोकने वाला कहा गया है ।

एक दूसरे काम्येष्टि के मध्य में कारीरि" इष्टि का वर्णन

1- तैत्ति० सं०-5/6/2/3

2- द्र० तैत्ति० सं० - 2/4/8/5

प्राप्त होता है । इस इष्टि का सम्पादन करते समय काला वस्त्र पहना जाता है । तथा कृष्ण वर्ण के पशुओं की बलि की जाती है । फल रूप में वृष्टि की कामना की जाती है -

"कृष्णंवासः कृष्णतूषम्परिधात्तरवद्धेवृष्ट्यैरूपमम् ।
सरूपरवभूत्वा पर्जन्यं वर्षयति ।।[1]"

अन्य पौष्टिक कर्म -

कृष्ण यजुर्वेदीय संहिताओं में बहुकामतृप्ति, ग्राम, सुवर्ण, गृह, आवास, विशिष्ट गुण योग्यता तेज और ब्रह्मवर्चस तथा ज्येष्ठत्वादि प्राप्त करने हेतु अनेक प्रकार के पौष्टिक कर्मों का वर्णन प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त राज्य प्राप्ति युद्ध विजय राज्यस्थैर्य, रोगमुक्ति तथा दीर्घायुष्य प्राप्ति हेतु अनेक प्रकार के पौष्टिक कर्मों का विधान प्राप्त होता है ।

शुक्ल यजुर्वेदीय संहिताओं में पौष्टिक कर्म -

शुक्ल यजुर्वेद की मंत्र संहिता वाजसनेयि संहिता के नाम से विख्यात है । जिसमें 40 अध्याय है इसकी प्रधान शाखाएँ माध्यन्दिन तथा

1- माध्य0 सं0 - 1/22

काण्व है , काण्व शाखा का प्रचार तथा माध्यन्दिन शाखा का उत्तरभारत में है । दोनों ही संहिताओं की विषय वस्तु लगभग समान है । यज्ञ यागादि से सम्बन्धित होने के कारणइन संहिताओं के मंत्रों में पुष्टि कर्म सम्बन्धीत तत्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान है जिनका अध्ययन निम्नवत् किया जा सकता है ।

अन्न-धन- सन्तति सम्बन्धी पुष्टि कर्म -

दर्शपूर्णमासयाग में जब तण्डुलों को जल से मिलाया जाता है तो उसे वंश अथवा सन्तान की प्राप्ति की साधना से जोड़ा गयाहै -
"प्रजायै त्वा संनह्यामि ।"[1] इसी प्रकार अनेक मंत्रों में धन, सन्तति आदि की प्राप्ति हेतु प्रार्थनाएं विहित हैं । अग्नि के लिए अग्नि सोम कपाल का विस्तार करा गयाहै । और उस विस्तृत कपाल को इस प्रकार सम्बोधित किया गया है जिससे यजमान अपने पुत्र पौत्रादि का कपालों के विस्तार की भांति ही विस्तार करे -

"उरु प्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् ।"[1]

1- माध्य० सं० - 1/22

वृष्टि सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

जलों से आग्रह पूर्वक आहवनीयाग्नि के पास आता है तथा वहाँ अधोलिखित मंत्र से सोम की शाखाओं की सहायता से "निग्राभ्य" संज्ञक जल का प्रोक्षण करता है । सोम शाखाओं से जल का प्रोक्षण जलपूर्ण मेघ के सन्चालन का प्रतीक है । इस प्रकार सन्चालित वह मेघ अवश्य ही वृष्टि प्रदान करताहै -

"श्रेणीनां त्वा पत्मन्ना धूनोमि । कुकूननानां पत्मन्नाधूनोमि ।"[1]

यश, वीर्य तथा ब्रह्मवर्चस सम्बन्धी पुष्टि कर्म -

राजसूय यज्ञ में रथ से उतरने के अनन्तर राजा अधोलिखित मंत्र से रथ के दक्षिण चक्र से बंधे हुए दूसरे सुवर्णफलक का स्पर्श करता है - "इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेहि, ऊर्गस्यूर्जं मयि धेति ।"[2] इस मन्त्र के अन्तिम चरण से राजा चक्र के मार्ग में रखी गई उदुम्बर की शाखा का स्पर्श करता है । इस प्रकार वह हिरण्य से वर्चस तथा उदुम्बर से ऊर्जस की प्रतीकात्मक प्राप्ति करता है । इसी प्रकार सौत्रामणी-

---

1- माध्य० सं० 8/48

2- माध्य० सं० 10/25

याग में अधोलिखित मंत्र से अध्वर्यु ब्रमाहुति से यजमान का प्रोक्षण करता है। यहाँ भी इस विशिष्ट याग से यजमान तेज ब्रह्मवर्चस वीर्य और यश की प्राप्ति की कामना करता है - "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि।"[1]

दीर्घायुष्य व रोग मुक्ति प्रदायक पौष्टिक कर्म -

दर्शपूर्णमास याग में कृष्णमृगचर्म पर स्थापित उपलों पर जब ओदन छिड़का जाता है तो प्राणवायु और दीर्घायुष्य तथा रोगमुक्ति प्राप्ति की कामना प्रकट की जाती है - "धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा।"[2]

अग्निवेदी पर भूमिका संस्कार करते हुए अध्वर्यु उसका कर्षण सिञ्चन करने के अनन्तर विविध वृक्षों तथा ओषधियों के बीज बोता है। इस कर्म के सम्पादन के समय पढ़े जाने वाले मंत्रों[3] में रोग दूर करने आदि सिद्धि

1- मा० य० सं० 20/3

2- मा० य० सं० 1/20

3- मा० य० सं० 12/75-102

तथा दीर्घायुष्य प्राप्त करने एवं शत्रुओं का पराभव करने का भाव निहित है ।

राजकर्म सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

राजसूय याग शुक्ल यजुर्वेद संहिता का प्रमुख विषय है । राज्य से च्युत राजा तथा सार्वभौम आधिपत्य के अभिलाषी राजा हेतु अनेक प्रयोग विहित है राजसूय याग में अभिषेक सम्पन्न करने के लिए विविध स्रोतो से जल एकत्र करता है । तथा उन्हें आपस में मिला देता है इस प्रकार के जल से अभिषिक्त यजमान वीर्य और धन से समन्वित हो जाता है ।[1] इसके पश्चात वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित तालाब, स्रोत, कूप, आदि से जल लाता है । तथा विभिन्न प्रान्तों से लाये गये जलों को मिलाकर भिन्न गुणों में समन्वय स्थापित करने का प्रतीकात्मक कृत्य सम्पादित करता है ।

अन्य पौष्टिक कर्म -

शुक्ल यजुर्वेद संहिता में मृत्यु और विद्युत आघात के भय को दूर करने के अनेक उपायों का वर्णन प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त वरुणपाश सदृश अनेक बाधाओं के निराकरण का उपाय बताया गया है ।

1- मा० य० सं० 10/2-4

सामवेद संहिता में पौष्टिक कर्म -

वैदिक संहिताओं में सामवेद का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । कौथुम, जैमिनीय, राणायनीय सामवेद की 3 प्रथित शाखाएं हैं । तीनों शाखाओं की विषयवस्तु लगभग समान है केवल क्रम में अन्तर पाया जाता है । सामवेद में उद्गाता संज्ञक पुरोहित हेतु स्तुति परक मन्त्रों का संकलन है । केवल 75 मन्त्रों को छोड़कर शेष सारे मन्त्र ऋग्वेदीय संहिता में प्राप्त होते हैं । सोमयाग इस संहिता के मन्त्रों का प्रमुख विषय है । सोमप्रवाह का साम्य वृष्टि प्रवाह के साथ स्थापित किया है । वृष्टि से अन्न और ऐश्वर्य की प्राप्ति सोमरस के प्रवाह की भाँति ही मानी जाती है । इस प्रकार का भाव सामवेदीय[1] मंत्रों में पाया जाता है । सोम प्रशंसापरक मंत्रों[2] में कहा गयाहै । कि सोम रस का प्रवाह भूमि पर यजमान के स्वर्ग और अन्तरिक्ष से लाकर सम्पूर्ण निधियाँ प्रदान करता है । सोम यागपरक पवमान सूक्तों में कहा गया है कि जो व्यक्ति इन सूक्तों का पाठकरता है वह मधुर अन्नादि का भोग प्राप्त करता है तथा उसे सरस्वती देवी जल घृत दुग्ध आदि प्रभूत मात्रा में प्रदान करती है ।[3] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि

1- साम० 2/2/2/1-3

2- कौथु सा०सं० 2/4/1/2

3- कौ० सं० 2/5/2/8

पवमान सूक्तों के पाठ से प्रचुर अन्न पेय आदि प्राप्त होता है जो स्पष्ट रूप से पुष्टि कर्मों की ओर इङ्गित करता है ।

अथर्ववेद में पौष्टिक कर्म -

वेदों में अन्यतम अथर्ववेद ऐहिक फल प्रदान करने वाली भूयसी विशिष्टता से सम्बलित है । यज्ञ के अध्यक्ष तथा अन्यतम ऋत्विज ब्रह्म का साक्षात् सम्बन्ध इसी वेद से है । पतञ्जलि के "नवधाथर्वणो वेदः" के अनुसार अथर्ववेद की 9 शाखाएं हैं किन्तु वर्तमान में पैप्पलाद और शौनक दो शाखाएं ही उपलब्ध है । अथर्ववेद सामान्यतः लोक जीवन से सम्बद्ध है । इसका विषयविवेचन अन्य वेदों की अपेक्षा नितान्त विलक्षण है । इसमें वर्णित विषयों का तीन प्रकार से विभाजन किया जा सकता है - {1} अध्यात्म {2} अधि-भूत {3} अधिदैवत । अध्यात्म प्रकरण में ब्रह्म परमात्मा के वर्णन के अन्तर्गत चारों आश्रमों का भी पर्याप्त निर्देश है । अधिभूत प्रकरण में राजा राज्य शासन संग्राम शत्रुवाहन आदि विषयों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है । अधिदैवत प्रकरण में नाना देवता यज्ञ तथा काल अनेक विषय में पर्याप्त ज्ञातव्य सामग्री है । इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ अन्य वेद देवताओं की स्तुति को ही अपना प्रतिपाद्य विषय बनाते हैं वहाँ अथर्ववेद भौतिक विषयों के वर्णन में अपने को कृतकार्य मानता है । आदिम मानव की नाना प्रकार की विचित्र क्रियाओं, आचार-विचारों और रहनसहन की पूरी जानकारी के लिए अथर्ववेद से प्राचीनतम कोई अन्य ग्रन्थ नहीं है ।

अथर्ववेद राष्ट्र और समाज तथा राष्ट्र की प्रजा की समृद्धि, सुरक्षा तथा उनके श्रेय प्रेय का सम्पादक अद्भुत साहित्य है ।

अथर्ववेद ने मनुष्य के धार्मिक जीवन को नित्य नैमित्तिक कृत्यों, संस्कारों, यज्ञों देवाराधन आदि अंगों में विभक्त कर भैषज्यानि, अभिचारिकाणि स्त्रीकर्माणि साम्मनस्यानि, राजकर्माणि प्रायश्चित्तानि पौष्टिकानि इन आठ कृत्यों द्वारा संस्राव्य यज्ञोहवि, नैर्ऋतहवि, सप्तर्षिहवि समान हवि, भूत हवि, ध्रुव हवि इन आठ हवि सम्बन्धी कृत्यों द्वारा ब्रह्मभेदन स्वर्गौदन सव पंचौदन सव चतुः शरावाल सव कर्की सव, अविसर्व अतिमृत्युसव अनुडुहसव, पृश्नि और पृश्निनगोसव, अजौदनसव, ब्रह्मास्यौदनसव, ऋषभसव, वशासव, शालासव, बृहस्पतिसव उर्वरासव इन सोलह प्रकार के सव यज्ञों द्वारा भूतप्रेत पिशाच राक्षस आदि आसुरी शक्तियों का दमन विश्वान्ध निर्ऋतवि तथा पाठा और अज ओषधियों द्वारा गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि क्रियातकके सोलह संस्कारों द्वारा अर्थो पार्जन के साधन कृषि, पशुपालन, व्यापार, वाणिज्य उद्योग द्वारा तथा भैषज्य विज्ञान, ज्योतिविज्ञान शरीविज्ञान रसायन विज्ञान भौतिक विज्ञान गणित विज्ञान द्वारा द्वारा और साहित्यिक कलात्मक जीवन को इतिहास पुराण नाराशंसी गाथाओं आख्यान सूक्तों काव्य संगीत इस विवेचन द्वारा एवं दार्शनिक जीवन के तत्वज्ञान, तप संयम नियमद्वारा ओजस्वी तेजस्वी बनाने का प्रयास किया है ।

अथर्ववेद मुख्यतया शान्ति पुष्टि कर्मों से सम्बन्धित है । यह वेद ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेद से एकदम भिन्न नहीं है । ऋग्वेद आदि में भी शान्ति पुष्टि कर्म आदि विषय है किन्तु अथर्ववेद में अधिक-विस्तार से मिलते हैं । चारों वेदों को पढ़ने के बाद यह भलीभाँति विश्वास हो जाता है कि अभीष्टवस्तु की प्राप्ति के लिए मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए जो स्तुतियाँ की जाती हैं जो यज्ञ अनुष्ठान पुरश्चरण आदि के किये जाते हैं, उनके अन्तराल में कोई रहस्यमयी शक्ति अवश्य निहित है । देवता भी उस शक्ति की सहायता की अपेक्षा रखते हैं । ऋग्वेद में ऋषि विश्वामित्र कहते हैं कि " अपनी स्तुतियों से वह आदि शक्ति भारत की जनता की रक्षा करें । उस आदिशक्ति की उपासना के अतिरिक्त एक और निम्न कोटि की उपासन कर धर्म और यातु को महती शक्ति मानकर अथर्ववेद में उल्लेख किया गया है । अथर्ववेद में दानवों कोभी अपने अनुकूल बनाने के लिए उपासना पद्धति मिलती है । जिस प्रकार दानवों से भय प्रकट किया गया है, उसी प्रकार रुद्र वरुण सदृश देवताओं से भी इसलिए भय प्रकट किया गया है कि ये देवता भी क्रुद्ध होने पर दानवों की भाँति पहुँचाने में समर्थ हैं ।

वेदों में "यातु" भी उपासना का एक आधार है । यह तीसरे प्रकार की उपासना अथर्व वेद में प्राय: धर्म के साथ सुयुक्त मिलती है । धर्म और यातु के विषय एक ही सूक्त में कहीं-कहीं एक ही मंत्र में सम्पृक्त मिलते हैं ।

अथर्ववेद संहितामें अन्य संहिताओं की अपेक्षा पुष्टि विषयक मन्त्र अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। पञ्चौदन याग की प्रशंसा में कहा गया है कि इस याग से ओज की प्राप्ति होती है तथा इस याग को करने वाला व्यक्ति प्रभूत मात्रा में धनधान्यादि सम्पत्ति तथा वस्त्रादि प्राप्त करता है - "इर्जं मह ऊर्जमस्मै दुहे यो ऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति"[1]

पुष्टि काम याग का फल बताते हुए कहा गया है कि इस याग से पशु प्रजा अन्न दुग्ध धन-धान्य गृह आदि की प्राप्ति होती है -

"पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छ रायस्पोषाय
प्रति मुञ्चे अहं त्वाम्।"[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि अथर्ववेद संहिता में पुष्टिकर्म सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री विद्यमान है।

1- अथर्व0 - 9/5/24

2- अथर्व0 19/31/13

राजकर्म सम्बन्धी पुष्टि कर्म -

अथर्ववेद में राष्ट्रीय भावना का पर्याप्त विकास दृष्टिगत होता है। पुरोहित आराधित ब्रह्मा के द्वारा यजमान के वीर्य बल तथा राष्ट्र की रक्षा करता है तथा उसके शत्रुओं का विनाश करता है। इस कर्म में सम्बन्धित मंत्रों में राजकर्म सम्बन्धी पुष्टिकर्मों का दर्शन किया जा सकता है -

" समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।
वृश्चामि शत्रुणां बाहूननेन हविषाहम् ।।
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु येनः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ।।
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् प्रपद्यस्व जह्येषां वरंवरंमामीषां मोचि कश्चन ।। "[1]

राज्याभिषेक के प्रसङ्ग में राजा के व्याघ्र चर्म के आसन पर बैठने तथा दिशाओं का आक्रान्त करने का वर्णन प्राप्त होता है। वस्तुतः व्याघ्र वीर्य और बल का प्रतीक है। इसप्रकार उसका व्याघ्र चर्मासन पर बैठना उसके वीर्य बल और प्रभुता की प्राप्ति का प्रतीक है। इसके उपरान्त तीनों के वर्चस स्वरूप जलों से राजा का अभिषेक किया जाता है। जो राजा को वर्चस्वयुक्त बनाता है। इसी प्रकार राजा की समृद्धि के अनेक प्रयोग प्राप्त होते हैं हैं।

सौमनस्य सम्बन्धी पुष्टि कर्म -

अथर्ववेद के अनेक मंत्रों में क्रोध दूर करने तथा घर के सदस्यों में सहृदयता और सौमनस्य की स्थापना की कामना की गई है उदाहरणस्वरूप अधोलिखित मन्त्र द्रष्टव्य है ।

"सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।।
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्[1]"

रोग मुक्ति तथा दीर्घायु प्राप्ति सम्बन्धी पौष्टिक कर्म

अथर्ववेद में रोगोपशमन के अनेक प्रयोग प्राप्त होते हैं । अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के द्वितीय सूक्त का प्रयोग रणसूक्त के रूप में, शत्रुओं को दूर करने के रूप में तथा व्रण आदि की शान्ति के लिए किया जाता है । इस सूक्त का स्वरूप निर्धारित करते हुए पाश्चात्य[2] विद्वानों ने इसका प्रयोग

1- अथर्व० 3/30/1-2

2- द्रष्टव्य- ब्लूमफील्ड, व्हिटनी, ग्रिफिथ आदि ।

चिकित्सा हेतु श्रेयस्कर बताया है ।

एक दूसरे अथर्ववेदीय सूक्त[1] का प्रयोग मूत्रावरोध के विरुद्ध किया गया है । इसमें ऋषि चिकित्सक तथा यातुर्विद के रूप में कार्य करता हुआ मुन्जरोग के पितृगणों के विषय में अपने ज्ञान की प्रशंसा करता हुआ रोगी को आश्वासन देता है कि वह उसके शरीर में स्थित रोगों को अनेक देवताओं से सम्बद्ध मुन्ज से दूर कर देगा । इसके उपरान्त वह आत्मविश्वासपूर्ण वाणी का उच्चारण करते हुए कहता है कि मैं तुम्हारी मूत्रनलिका में छिद्र करता हूँ, तुम्हारा मूत्राशय शिथिल हो तथा वहाँ जो कुछ भी एकत्रित हुआ हो धनुष से फेंके गये बाण की भाँति पहले की तरह ही वेगपूर्वक बाहर निकले । मूत्र विमोचन हेतु बाण का फेंकना पौष्टिक कर्म की ओर संकेत करता है । एक अन्य अथर्ववेदीय सूक्त[2] का प्रयोग रक्त प्रवाह अथवा अव्यवस्थित रजस्राव को रोकने हेतु किया जाता है । इस सूक्त का स्वरूप अभिचार मन्त्रों की भाँति है । इसमें ऋषि रक्तवस्त्र धारण किये हुए भ्रातृविहीना भगिनी की भाँति चलती हुई शिराओं को रोकने का उद्योग करता है तथा मध्यम तथा उत्तम प्रत्येक शिराओं को रुकने के लिए कहता है -

---

1- अथर्व- 1/3

2- अथर्व0 - 1/17

"शतस्य धमनीयां सहस्रस्य हिराणाम् ।
अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ।।"[1]

अथर्ववेदीय एक अन्य सूक्त[2] का प्रयोग शरीर से दुर्भाग्य-सूचक चिह्नों को दूर करने के लिए तथा जो कुछ भी शुभ व कल्याण कारी हो उसे ग्रहण करने हेतु किया जाता है । एक अन्य अथर्ववेदीय सूक्त का प्रयोग हृदरोग और पाण्डुरोग से निदान पाने के लिए किया गया है । इसी सूक्त के मन्त्रों में रोगी को दीर्घायु प्रदान करने के प्रयोगों का भी वर्णन हुआ है-

"या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः।
रूपं-रूपं वयो वयस्ताभिष्ट्वा परिदध्मसि ।।"[3]

अथर्ववेदीय सूक्तों[4] में रोग विनाश हेतु औषधियों से प्रार्थना की गई है । इन्हीं मन्त्रों में औषधियों से कुष्ठ चिकित्सा करने का भी विधान प्रस्तुत किया गया है -

"अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्त्वचि ।
दूष्याकृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्मश्वेत मनीनशम् ।।"[5]

1- अथर्व0 - 1/17/2

2- अथर्व0 - 1/18

3- अथर्व- 1/22/3

4- अथर्व- 1/23, 1/24 आदि ।

ऋग्वेदीय 10/163 सूक्त की भांति एक अथर्ववेदीय सूक्त[1] का प्रयोग शरीर के सभी अङ्गों से यक्ष्मारोग के निवारण हेतु हुआ है तथा एक दूसरा सूक्त[2] रोगी के शरीर से क्षेत्रिय रोगों को दूर करने में समर्थ बताया गया है। अथर्ववेद के अन्य अनेक सूक्तों[3] का प्रयोग यक्ष्मा रोग निवारण कास रोग निवारण, तक्मन या ज्वर निवारण, कर्णशूल विलोहित आदि रोगों की पीड़ा- निवारण केश वृद्धि विषनाश, गर्भ हानि सिर-पीड़ा राज यक्ष्मा के निवारण तथा दीर्घायुस्य प्रदान करने केलिए किया गया है।

आयुष्य वर्चस तथा वीर्यादि प्रदायक पुष्टिकर्म -

अथर्ववेद में दीर्घायुस्य वर्चस् तथा वीर्यादि प्रदान करने वाले अनेक सूक्तों का विधान प्राप्त होता है। एक मन्त्र[4] में हिरण्यमणि की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि हिरण्य मणि धारण करने वाला व्यक्ति राक्षसों और पिशाचों को भी पराजित कर देता है। हिरण्य मणि धारक- व्यक्ति जल का तेज ज्योति, ओज, बल तथा वनस्पतियों का वीर्य प्राप्त करता है।

1- अथर्व0 2/33

2- अथर्व0 3/7

3- द्रष्टव्य अथर्व0 3/11, 4/13, 6/105, 9/8 ,20/96 आदि

इसी प्रकार हिरण्य की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि अग्नि से उत्पन्न हुआ है तथा मर्त्यों में अमर्त्य कहा गया है। इसको धारण करने वाला व्यक्ति आयुष्य, वर्चस ओज और बल प्राप्त करता है क्योंकि यह अमृतत्व और वर्चस का प्रतिनिधित्व करता है। हिरण्य धारण करते समय इस मन्त्र का पाठ किया जाता है -

आयुषत्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च यथा हिरण्यतेजसा विभासि जना अनु।[1]

इसी प्रकार कल्याण तथा आयुष्य की प्राप्ति,[2] अनेक प्रकार के अनिष्टों से रक्षा तथा दीर्घायुष्य एवं वर्चस की प्राप्ति[3] वृषरोग शमन,[4] आयुष्य[5], पौरुषे,[6] स्वास्थ्य तथा आयुष्य,[7] आयुष्य तथा तुज,[8]

1- अथर्व0- 19/26/3

2- अथर्व0 - 3/30।

3- अथर्व0 - अथर्व0 4/10

4- अथर्व0 5/16

5- अथर्व0 - 5/10, 8/12

6- अथर्व0 6/11

7- अथर्व0 7/53,55

8- अथर्व0 19/28

शरीर के विभिन्न अङ्गों के समुचित सन्चालन हेतु शक्ति प्राप्ति के अनेक सूक्त व मंत्र प्राप्त होते हैं।

स्त्री सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

अथर्ववेद में स्त्रियों से सम्बद्ध पौष्टिक कर्मों का बाहुल्य है। स्त्रियों के अधिकांश पौष्टिक कर्म उनके सफल प्रजनन से सम्बद्ध हैं। सुरक्षित तथा सुख प्रसव के लिए अनेक मन्त्रों में गर्भ को प्रेरित करने के निमित्त अनेक देवताओं की प्रार्थना की गई है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को आकर्षित करनेके अनेक उपाय भी मन्त्रों में वर्णित हैं। उदाहरणार्थ-एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के हृदय को आकृष्ट करने के लिए एक मधुर ओषधि को "उखाड़ता है जो एकान्त में उत्पन्न होती है तथा उसके प्रति अपनी इच्छा को प्रकट करते हुए कहता है कि वह उसे मधुर बनावे जिससे उसकी प्रेमिका उसे मन से चाहने लगे -

"जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वा मूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।।"[1]

इसके आगे वह प्रेमी ओषधि से भी अधिक मधुर होकर अपनी प्रेमिका से कहता है कि तुम मधुयुक्त शाखा की भाँति मुझसे प्रेम करो-

---

1- अथर्व0 - 1/34/2

"मधोरस्मि मधुतरो मदुघात् मधुमत्तरः ।
मामित्कल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ।।

इसके विपरीत एक स्त्री अपनी सपत्नियों को वश में करने तथा अपने पति को पूर्ण रूप से केवल अपने पर ही आसक्त करने हेतु एक सूक्त[1] का प्रयोग करती है । सपत्नी का पराभव स्त्री और उसके द्वारा प्रयुक्त औषधि के सहयोग से सम्पन्न होती है -

"अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ।"[2]

अथर्ववेदीय सूक्तों में स्त्रियों के लिए वीर पुत्र की प्राप्ति का विषय भी वर्णित है । इस सूक्त[3] के मन्त्रों में स्त्रियों को सम्बोधित करके कहा गया है कि तुम्हारे बन्ध्यात्व को मैं अन्यत्र स्थापित करता हूँ तथा तू वीर में बाण की भांति तुम्हारी योनि में गर्भ आवे । मैं तुम्हारे लिए प्राजापत्येष्टि का सम्पादन करता हूँ । दिव्य औषधियां पुत्र प्राप्ति में तुम्हारी सहायता करें ।

1- अथर्व0 - 3/18

2- अथर्व0- 3/18/5

3- अथर्व0 - 3/23

एक अन्य सूक्त के उच्चारण से कोई व्यक्ति स्त्रियों का स्नेह पाने में समर्थ हो सकता है । इस सूक्त का उच्चारण करते हुए प्रेमी व्यक्ति अपनी प्रेमिका की प्रतिमा के हृदय के बाण से भेदता है । बाण यहाँ काम का प्रतीक होता है । इस प्रकार की प्रतीकात्मक क्रिया के द्वारा अपनी प्रेमिका के हृदय का प्रेम का प्रवेश कराता है । स्त्री प्रतिमा के हृदय में बाण का वेधन करते हुए वह कहता है ।

"उत्तुदस्त्वोत्तदतु माधृथाः शयने स्वे ।
इषु कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ।।"[1]

प्रेमी इस प्रकार इसलिए बाण से बेधता है जिससे उसकी प्रेयसी भीषण काम व्यथा से पीड़ित हो जाय तथा दीनमुखी विनम्र से नम्र होकर उसके पास आवे और उसकी वशवर्तिनी रहे । इस कृत्य में स्पष्ट रूप से यातांत्रिक प्रभाव परिलक्षित होता है ।

शान्तिकारक पुष्टि कर्म -

अथर्ववेद में शान्ति कारक पुष्टि कर्मों का प्राचुर्य है । क्षति, दुर्भाग्य, आपत्ति अथवा अशान्ति स्थितियों से रक्षा के अनेक विधान अथर्ववेदीय सूक्तों में वर्णित हैं । सर्वविध आपत्तियों से मुक्ति तथा कल्याण प्राप्ति के लिए अनेक विधानों का वर्णन अथर्ववेद[2] में किया गया है ।

1- अथर्व० - 3/25/1

2- द्रष्टव्य अथर्व- 2/4, 2/10 आदि

भयावह पशुओं तथा चोरों के प्रतिकार के लिए भी विधान प्राप्त होते हैं । इस प्रकार के अथर्ववेदीय मन्त्रों में दुर्भावयुक्त मनुष्यों तथा मार्गों पर दूरस्थित वृक सर्प चोर आदि को पृथग्गमन हेतु प्रेरित किया गया है ।[1]

अथर्ववेदीय सूक्तों में विषाक्त बाणों के प्रतिकार के भी मन्त्र प्राप्त होते हैं । इन मन्त्रों में ऋषि परोक्ष-परोक्ष रूप से बाणों को विषाक्त करने वाले सभी पदार्थों और व्यक्तियों को सामर्थ्यहीन बना देता है ।[2] इसके अतिरिक्त अपामार्ग के द्वारा दुःस्वप्न राक्षस दर्शन तथा मरण आदि का निवारण किया गया है । इन मन्त्रों में ऋषि इच्छा प्रकट करता है कि शाप देने वाला स्वयं ही अपनी सन्तान का भक्षण करें । ऐन्द्रजालिकों का इन्द्रजाल उन्हीं का विनाश करे -

"दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचः ता अस्मन्नाशयामसि ।।
क्षुधा मारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे ।।[3]

1- द्र0 अथर्व0 - 4/3/2

2- द्र0 अथर्व0 - 4/6/1-8

3- अथर्व0 - 4/17/5-6

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अथर्ववेद में विविध बाधाओं के निवारण तथा मानव की लौकिक समृद्धि हेतु बहुविध पौष्टिक कर्मों का विधान किया गया है । दुःस्वप्न निवारण आयुष्य वर्चस आदि की प्राप्ति, पुत्रोत्पत्ति, पाप लक्षण विनाश, रोग लक्षण विनाश, शत्रुविनाश आदि के लिए भी अनेक प्रकार के पौष्टिक कर्मों का विधान प्राप्त होताहै ।

ब्राह्मणों आरण्यकों एवं उपनिषदों में विहित पौष्टिक कर्म -

ब्रह्म के व्याख्यापरक ग्रन्थों का नाम ब्राह्मण है । ब्रह्म शब्द का अथर्ववेद में निर्दिष्ट मन्त्र[1] है । इस प्रकार वैदिक मंत्रों का व्याख्यान तथा यज्ञयागादि का साङ्गोपाङ्ग तथा पूर्ण परिचय प्रदान करना ब्राह्मणों का मुख्य विषय है । ब्राह्मणों के प्रतिपाद्य विषयों में जिन दस वस्तुओं का निर्देश प्राप्त होता है, शाबर भाष्य के इस सङ्ग्रह में द्रष्टव्य है -

"हेतुर्निर्वचनं प्रशंसा विधिः ।
परिक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण कल्पना ।।
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मण स्य तु 22."[2]

1- ब्रह्म वै मन्त्रः, श0ब्रा0 7/1/1/5

2- शाबर भा0 2/1/8

ब्राह्मणों की विषयवस्तु के अन्तर्गत विधि, विनियोग, हेतु अर्थवाद की गणना प्रमुख रूप से की जाती है ।

परम्पराया प्रत्येक वैदिक संहिता का अपना ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद होताहै । आरण्यक तथा उपनिषद ब्राह्मणों के परिशिष्ट ग्रन्थ के समान है जिनमें ब्राह्मण ग्रन्थों के सामान्य प्रतिपाद्य विषय से भिन्न विषयों का प्रतिपादन सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । आचार्य सायण के अनुसार अरण्य में पठ्य होने के कारण इनका आरण्यक नाम सार्थक है -

"अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते ।
अरण्येतदधीयतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते ।"[1]

आरण्यकों का मुख्य विषय यज्ञ यागों के भीतर विद्यमान आध्यात्मिक तथ्यों का मीमांसा है । प्राण विद्या की महिमा का विशेष प्रतिपादन आरण्यकों में ही उपलब्ध होता है । संहिता के मंत्रों में इस विद्या का सङ्केत है परन्तु आरण्यकों में इन्हीं बीजों का पल्लवन हुआ है । उपनिषद आरण्यकों में ही सम्मिलित हैं अर्थात् उन्हीं के विशिष्ट अङ्ग हैं । वेद के अन्तिम भाग होने से तथा सार्वभूत सिद्धान्तों के प्रतिपादक होने के कारण उपनिषद ही वेदान्त के नाम से विख्यात है । भारतीय तत्वज्ञान तथा

1- तै० आ० भा० श्लोक 6

धर्म सिद्धान्तों के मूल स्रोत होने का गौरव इन्हीं उपनिषदों को प्राप्त है। उपनिषद वस्तुतः वह आध्यात्मिक मानसरोवर है जिससे ज्ञान की भिन्न-2 सरितायें निकलकर इस पुण्यभूमि में मानव मात्र के ऐहिक कल्याण, आमुष्मिक मंगल के लिए प्रवाहित होती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि प्रत्येक संहिता का पृथक्-पृथक् ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद होना चाहिए। किन्तु सम्प्रतिकुस्थिति वैसी नहीं हैं न तो सभी संहितायें और न ही उनके ब्राह्मणादि ग्रन्थ पूर्ण मात्रा में उपलब्ध हैं फिर भी उपलब्ध वैदिक साहित्य अत्यन्त समृद्ध है।

पौष्टिक कर्मों का वर्णन विशेषतया ब्राह्मण ग्रन्थों में ही प्राप्त होता है क्योंकि ये ग्रन्थ प्रत्यक्ष रूप से लौकिक जीवन से जुड़े हुए हैं। इनके मुख्य विषयवस्तु यज्ञयागादि का साक्षात् सम्बन्ध लौकिक जीवन से है जबकि आरण्यक और उपनिषद ऐहिक जीवन की अपेक्षा पारलौकिक चिन्तन की विषयवस्तु से युक्त है अतः उनमें लौकिक जीवन से सम्बद्ध पौष्टिक कर्मों का नितान्त अभाव पाया जाता है। अतः इस प्रसङ्ग में प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतिपादित पौष्टिक कर्मों के विधान का अध्ययन किया जायेगा।

ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में पौष्टिक कर्म -

ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में सम्प्रति ऐतरेय और शांखायन ब्राह्मण

उपलब्ध हैं । इन ब्राह्मणों में पर्याप्त मात्रा में पुष्टि सम्बन्धी विधान वर्णित है । अपनी सन्ततियों के साथ अन्नाद और अन्नपति होने के लिए क्रमशः विराड छन्द से और द० दिशा के लिए दक्षिणाग्नि में आहुति प्रयोग ऐतरेय ब्राह्मण[1] में विहित है । इसी प्रकार शांखायन ब्राह्मण में इडारूप में यज्ञीय अन्न का आह्वान करते हुए यजमान अपने आप में अन्न धारण करता है । याज्ञेय अन्न साधारण अन्न ही है -

"अन्नं वा इडाऽन्नमेव तदात्मन् धत्ते ।[2] ।

ऐतरेय ब्राह्मण[3] में रथन्तर साम यजमान के सम्मुख अन्नादि का उपस्थापक कहा गया है । सोम याग के दिन प्रातरनुवाक में आयुष्काम के लिए सौ ऋचाओं का पाठ विहित है, क्योंकि मनुष्यों आयु, वीर्य और इन्द्रियों की संख्या भी सौ ही है । -

"शतमनूच्यमायुष्कामस्य । शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यः शतेन्द्रिय आयुष्ये वैनं तद्वीर्यमिन्द्रिये दधाति ।[4]

1- ऐ० ब्रा०- 1/6, 1/8, 7/12 ।

2- शां० ब्रा०- 3·7 ।

3- ऐ० ब्रा० 8·1, 6·15, 20, 7·31 ।

4- ऐ० ब्रा० 2·17 ।

इसी प्रकार शांखायन ब्राह्मण में विश्वजित याग के प्रसङ्ग में कहा गया है कि अन्न प्राप्त करने के उचित व्यवहार करना चाहिए। इस सन्दर्भ का आशय है कि अवर, मध्यम और उत्तम संसर्ग से क्रमशः अवर, मध्यम और उत्तम अन्न की प्राप्ति होती है।[1]

ऐतरेय और शांखायन दोनों ही ब्राह्मणों में सन्तति प्राप्ति के पुष्टि विधान प्राप्त होते हैं। प्रथित शुनःशेप आख्यान में बताया गया है कि शुनःशेप कथा का श्रवण करने से निश्चित रूप से पुत्रप्राप्ति होती है - "पुत्रकामा हाप्याख्यापयेरन्लभन्तेहपुत्रान् लभन्ते ह पुत्रान्।"[2]

इसी प्रकार शांखायन ब्राह्मण में भी अनेक स्थलों[3] पर सन्तति प्राप्ति सम्बन्धी पौष्टिक कर्म वर्णित है। उदाहरणार्थ जब अग्नि-सोम के समक्ष प्रतिष्ठित होता ऋचा का पाठ करता है तो गर्भ चाहने वाली स्त्रियाँ गर्भ का ही ध्यान करें। इससे वह गर्भ धारण करने में समर्थ हो जाती हैं - "ब्रह्म वा अग्निः क्षत्रम् सोमस्तद्यदुपवसथेऽग्नीषोमो प्रणयन्ति--तद्यदासीनो होतैतामृचमन्वाः --इति गर्भ कामाये गर्भं ध्यायाल्लभते हगर्भ-मथाऽऽग्नीध्रीयेऽग्निम् निदधति।"[4]

1- द्र० शांखायन ब्रा० 25/15 ।

2- ऐ०ब्रा० - 7/18

3- शां० ब्रा०- 8/4/8/5 आदि ।

4- शां० ब्रा०- 9/5 ।

इसी प्रकार अन्न ऐश्वर्य और पशुप्राप्ति हेतु भी दोनों ही ब्राह्मण ग्रन्थों में पुष्टि विधान प्राप्त होते हैं ।[1] इसके अतिरिक्त बहु काम तृप्ति[2] सर्व काम तृप्ति, विशेष योग्यता और विशिष्ट शक्ति की सम्प्राप्ति तथा शान्ति और अभिचार से सम्बद्ध क्रियाओं का वर्णन दोनों ही ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होता है ।

कृष्ण यजुर्वेदीय ब्राह्मणादि ग्रन्थों में पौष्टिक कर्म -

कृष्ण यजुर्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में तैत्तिरीय ब्राह्मण विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इसमें पुष्टि, धन, पशु, सन्तान, वर्षा आदि से सम्बद्ध मन्त्र और विधियाँ वर्णित हैं । इस ब्राह्मण ग्रन्थ में पुष्टि और धन प्राप्ति करने के अनेक प्रयोग वर्णित हैं । उदाहरणार्थ वाजपेय याग में यजमान यूप से उतरने के अनन्तर अपने बायें पैर को अजा के चमड़े पर रखता है । ऐसा करने से उसकी समृद्धि विस्तार और प्रजनन शक्ति सुदृढ होती है । यह अजा गाय आदि पशुओं के समान नहीं होती क्योंकि यह वर्ष में तीन बार बच्चे देती है अतः यह पुष्टि का प्रतिनिधित्व करती है ।[3] इसी प्रकार सन्तति

1- द्र० ऐ०ब्रा० 1/5, 1/8, 2/3, 4,18, 3/24, 4/1, 21 आदि तथा शां०ब्रा० 14/2, 15/5, 2/2, 4/3/7 आदि ।

2- द्र० ऐ०ब्रा० 1/5, 2/14, 2/17 आदि ।

3- तैत्ति०ब्रा० 1/3/7/7

प्राप्ति के पौष्टिक कर्मों में बताया गया है कि कोई भी सन्तति कामी व्यक्ति द्वारा योत्रि मन्त्र का जाप करके दूर्वा की बलि देवे । प्रजापति देवहोता" होता है । इस मन्त्र का जाप करने से व्यक्ति प्रजापति हो जाता है और उसी के समान सन्तति प्राप्त करता है ।[1] तैत्तिरीय ब्राह्मण में सन्तति और पशु,[2] अन्न,[3] वर्षा,[4] कामतृप्ति[5] ब्रह्मवर्चस और तेज[6] दीर्घायुष्य प्राप्ति तथा रोग मुक्ति[7] एवं राज कर्म[8] आदि से सम्बद्ध अनेक पुष्टि कारक विधान प्राप्त होते हैं ।

1- तै० ब्रा० 2/1/1/1

2- तै० ब्रा० 1/1/4/8, 1/3/3/4

3- तै० ब्रा० 1/ 3/3/2, 3, 1/3/3, 7 आदि

4- तै० ब्रा० 1/6/4/5, 3/2/9 /3 आदि

5- तै० ब्रा० 2/7/14/2, 3/1/4/15

6- तै० ब्रा० 1/1/2/1, 2/1/5/5

7- तै० ब्रा० 1/3/7/7, 2/4/4/1-2

8- तै० ब्रा० 1/3/2/3, 1/3/5/4

इसके अतिरिक्त अनेक शान्तिकारक और अभिचार सम्बन्धी पौष्टिक कर्मों का विधान भी तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्राप्त होता है । इनके अन्तर्गत वरुणपाश से मुक्ति, पापमुक्ति शत्रुओं और राक्षसों का विनाश, पशु विहीनता से मुक्ति, अधिरत्वहानि से मुक्ति, आयु, तेज और वाक्-शक्ति की प्राप्ति आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मणादि ग्रन्थों में विहित पौष्टिक कर्म -

शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मणादि ग्रन्थों का प्रतिनिधि ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण है । इस ब्राह्मण ग्रन्थ में पदे-पदे विविध पौष्टिक कर्म प्रतिपादित है । दर्शपूर्ण याग में बताया गया है कि ध्रुवा और शूर्प को गार्हपत्याग्नि में रखने के बाद यज्ञीय उददेश्य की पूर्ति हेतु शकट से व्रीहि ग्रहण करता है । इससे यजमान परिपूर्णता को प्राप्त हो जाता है । क्योंकि धान्य से परिपूर्ण शकट परिपूर्णता का प्रतीक होता है । इस कृत्य से पुष्टि प्राचुर्य का विधान किया गया है ।[1] इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण के अनेक प्रसङ्गों में सन्तति प्राप्ति के अनेक कर्म विहित हैं । इस विषय में ब्राह्मण[2] में एक आख्यान प्राप्त होता है । इसके अनुसार एक बार सन्ततिकामी मनु ने

1- श० ब्रा० 1/1/2/6

2- श० ब्रा० 1/8/1/11

पाक यज्ञ का आयोजन किया । उन्होंने जलों में घृत, तक्र, दधि, माड आदि को संयोजित किया जिससे एक स्त्री उत्पन्नहुई । उसी के द्वारा मनु ने ही इस मानव जाति को उत्पन्न किया । मनु की यह पुत्री "इडा" के नाम से प्रसिद्ध है । जो कोई भी इस यज्ञ का आयोजन करताहै वही अपने वंश का विस्तार करताहै । इसी प्रकार एक अन्य विधान[1] में भी सन्तति प्राप्ति का उपाय वर्णित है । वाजपेय याग में यजमान और उसकी पत्नी दोनों ही उदुम्बर के आसन पर बिछाये गये अजाचर्म पर बैठते है क्योंकि बकरा वर्ष में तीन बार सन्तति उत्पन्न करती है । इसके अतिरिक्त वह एक साथ दो या तीन बच्चे उत्पन्न करती है । अतः अज ही प्रजापति है । अजा चर्म के सम्पर्क से यजमान भी प्रजापति हो जाता है । और वह सन्तान उत्पन्न करताहै । इसी प्रकार अनेक स्थलों[2] पर पौष्टिक कर्मों का प्रतीकात्मक विधान प्राप्त होता है । शतपथ ब्राह्मण में अनेक स्थलों पर पशुओं की समृद्धि हेतु पौष्टिक कर्मों का विधान प्राप्त होता है । उदाहरणार्थ राजसूय याग के प्रसङ्ग में "त्रिषंयुक्तपुरोडाश " प्रदान किया जाता है जिससे पशु प्राप्ति की साधना की जाती है । इसके समर्थन में यह तर्क दिया जाता है कि अग्नि पशुओं का दाता और पूषा उनका स्वामी है । इन्हीं देवों की कृपा से यजमान पशुओं को प्राप्त करता है ।[3]

1- श० ब्रा० 5/2/1/24

2- श० ब्रा० 2/2/4/10, 8/4/3/20, 3/8/4/13 आदि

3- श० ब्रा० 5/2/5/8-6

शतपथ ब्राह्मण में अन्न प्राप्ति के लिए भी विविध पौष्टिक कर्मों का विधान मिलता है । उदाहरणार्थ वाजपेय[1] याग में यजमान अपनी पत्नी द्वारा यज्ञीय भूमि पर लाये जाने के बाद उदुम्बर काष्ठयुक्त सिंहासन पर बैठाया जाता है । यहाँ उदुम्बर अन्न का प्रतीक है । अतः उस पर बैठने से अन्न प्राप्ति की साधना हो जाती है । उदुम्बर के अन्नात्मक गुण यजमान में प्रविष्ट हो जाते हैं । जिससे वह अन्न पर अधिकार कर लेताहै ।

इसी प्रकार वर्षा की प्राप्ति के भी अनेक विधान प्राप्त होते हैं जिनसे अभीष्ट काल में अभीप्सित वर्षा कराई जा सकती है।[2] शतपथ ब्राह्मण में सम्पूर्ण इच्छाओं की पूर्ति हेतु विविधयागों के प्रसङ्ग में अनेक पौष्टिक कर्मों का विधान प्राप्त होता है । अग्न्याधान के समय इष्टि का सम्पादन करते हुए सत्रह सामिधेनी मन्त्रों का पाठ विहित है । एक वर्ष में महीने तथा पाँच ऋतुएं मानी जाती है । इसी प्रकार यह सत्रह गुण युक्त प्रजापति का प्रतिपादन करतेहैं । चूंकि प्रजापति सर्वत्र विद्यमान है तथा उसकी सभी अभिलाषाएं पूर्ण होती है । अतः इस इष्टि का सम्पादन करने से यजमान की भी सारी इच्छाओं के पूर्ण होने की कामना की जाती है-

---

1- श0 ब्रा0 5/2/1/23

2- श0ब्रा0 1/7/1/2, 8/2/3/5, 8/3/2/5 आदि ।

"अथ यच्चतुर्थ्वायां गृह्णाति । सर्वस्मै तदन्नाय गृह्णाति, तत्तदनादिरयाज्य-स्यैव रूपेण गृह्णाति । कस्मा उद्मादिशेषत: सर्वाभ्य एव देवताभ्योऽवद्यति तस्मादनादिरयाज्यैव रूपेण गृह्णाति ".[1]

एतदतिरिच्य गुणविशेष व शक्तिविशेष की प्राप्ति हेतु ब्रह्मवर्चस तेज, यश और लक्ष्मी[2] प्राप्ति ओज और वीर्य की प्राप्ति[3] अधीनता और श्रेष्ठता की प्राप्ति,[4] दीर्घायुष्य की प्राप्ति,[5] प्राणियों और फसलों के संवर्धन की प्राप्ति,[6] ऐश्वर्य यश अन्न और भोजन की प्राप्ति,[7] आदि अनेक पौष्टिक कर्म विहित हैं ।

इन पुष्टिकारक कृत्यों के अतिरिक्त शान्तिकारक-पौष्टिक कर्म यथा क्षति-मृति विपद, दौर्भाग्यादि से मुक्ति प्रदान करने वाले[7] पापों

1- श० ब्रा० 1/3/5/10

2- श०ब्रा० 2*2/2/8, 2/3/2/73, 5/3/5/3/ आदि

3- श०ब्रा० 3/1/3/8, 3/2/1/10, 4/5/4/4, 13/1/5/6 आदि ।

4- श०ब्रा० 2•4•4•5, 3•9•1•13•4•5•4•1-2, 5•4•1•3-8 आदि ।

5- श०ब्रा० 1•1•2•14, 1•2•1•19, 1•4•1•5•5•2•410 आदि

6- श०ब्रा० 1•3•4•7, 2•4•4•2, 13•1•2 आदि ।

7- श० ब्रा० 1•6•3•15

8-

और वरुण के पाशों से मुक्ति प्रदान करने वाले[1] तथा शत्रुओं राक्षसों आदि के प्रतिकूल[2] अनेक पौष्टिक कर्मों का विधान प्राप्त होता है ।

राजकर्म सम्बन्धी पौष्टिक कर्म ब्राह्मण के पौष्टिक कर्मों में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । इनका विवेचन शतपथ ब्राह्मण की महत्ता में वृद्धि करताहै । राजा व राष्ट्र की समृद्धि तथा राज्यच्युत राजा द्वारा पुनः राज्य की प्राप्ति, राजा व प्रजा में पारस्परिक सौमनस्य की स्थापना हेतु अनेक विधानों का वर्णन राजसूय वाजपेय अश्वमेधादि यागों के प्रसङ्ग में किया गया है ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शतपथ ब्राह्मण याज्ञिक विधि-विधानों के साथ-साथ अनेक पौष्टिक कर्मों का विधान भी प्रस्तुत करताहै । इस दृष्टि से भी शतपथ ब्राह्मण न केवल ब्राह्मण ग्रन्थों में अपितु सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में अत्यन्त महनीय है ।

सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में विहित पौष्टिक कर्म -

ब्राह्मण साहित्य की दृष्टि से सामवेद अत्यन्त समृद्ध है । आचार्य सायण के अनुसार सामवेद के आठ ब्राह्मण ग्रन्थ हैं -

---

1- श०ब्रा० 1·3·1·14, 3·9·4·17, 4·6·9·13· 7·2·1·14 आदि ।

2- श० ब्रा० 1·1·2·2 , 1·1·4·17, 1·1·4·2·2 आदि ।

अष्टौ हि ब्राह्मण ग्रन्था: प्रौढं ब्राह्मणमादिमम् ।
षड्विंशाख्यं तृतीयं स्यात् तत: सामविधिर्भवेत् ।।
आर्षेयम देवताध्यायो भवेदुपनिषत्तत: ।
संहितोपनिषद्वंशो ग्रन्था अष्टावुदीरिता:।।[1]

पञ्चविंश, षड्विंश, मन्त्र, सामविधान, आर्षेय, देवत संहितोपनिषद व वंश ब्राह्मण सामवेद से सम्बद्ध ब्राह्मण है । ये ब्राह्मण ग्रन्थ पौष्टिक कर्मों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है ।

पञ्चविंश ब्राह्मण में विहित अन्न-पशु आदि की समृद्धि के कर्म द्रष्टव्य हैं -

"अन्नं करिष्याम्यन्नं प्रविश्याम्यन्नं अभिष्यामि ।[2],
"अन्नमकरमन्नमभूदन्नमजीजनम् ।[3]
"इदमहममुं यजमानं पशुष्वध्यूहामि पशुषु च मां ब्रह्मवर्चसे ।[4]

इसी प्रकार प्रजा और पशु की प्राप्ति हेतु भी पौष्टिक कर्म विहित है ।

1- द्र0 देवत ब्राह्मण- सायणभाष्य भूमिका भाग ।

2- पञ्चवि0 ब्रा0 1·3·6 ।

3- पञ्च0ब्रा0 1·3·7 ।

4- पञ्च0 ब्रा0 1·2·6 ।

"प्रजाकामो वा पशुकामो वा स्तुवीत प्रजा वैकुलानाय प्रजावः कुलाद्‌ कुलायमेव भवति ।[1]

सामवेद का मन्त्रब्राह्मण पौष्टिक कर्मों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है । इसके एक प्रसङ्ग में नववधू की कामनाओं की पूर्ति की कामना पौष्टिक कर्मों की ओर संकेतित करता है -

"या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देव्यो अन्तानभि तोततन्थ ।
तास्त्वा देव्यो जरसा संव्ययन्त्वायुष्मतीदं परिधत्स्ववासः ।।

परिधत्त धत्त वाससैना शतायुषीं कृणुत दीर्घमायुः ।
शतं च जीव शरदः सुवर्चा वसूनिचार्ये विभजासिजीवन् ।।[2]

एक अन्य प्रसंग में वधू को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि हे कन्यके । मैं तुम्हारे बन्ध्यात्व, पुत्रमरणादि अन्य अनिष्टों को मस्तकस्थ माला की भाँति उतारकर शत्रुओं पर फेंक दे रहा हूँ -

"अप्रजस्य पौत्रमर्त्यं पाप्मानमुत वा अघम् ।
शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशं स्वाहा ।।[3]

1- मन्त्र ब्रा० 2·3·2 ।

2- मन्त्र ब्रा० 1·1·5·6

3- मन्त्र ब्रा० 1·1·14 ।

यहाँ पर वध के पाप को शत्रुओं पर डालना अभिचार की ओर सङ्केत करता है । इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सामवेदीय ब्राह्मणों में पौष्टिक कर्म पर्याप्त रूप में विद्यमान हैं । जिनका उद्देश्य यजमान को सर्वतोभावेन समृद्ध करना है ।

अथर्ववेदीय ब्राह्मणादि ग्रन्थों में विहित पौष्टिक कर्म -

अथर्ववेद का एकमात्र ब्राह्मण गोपथ ब्राह्मण उपलब्ध है । इस ब्राह्मण में पौष्टिक कर्म अत्यधिक मात्रा में विद्यमान हैं, क्योंकि इसका सम्बन्ध अथर्ववेद से है अतः ऐसा होना स्वाभाविक भी है । इस ब्राह्मण ग्रन्थ में प्रजा और पशु की समृद्धि से सम्बद्ध[1] अनेक प्रसङ्ग हैं । इसके प्रसङ्ग[2] में कहा गया है कि देवताओं ने ब्रह्मौदन द्वारा असुरों को पराजित किया था, उसी का जानकार जब ब्रह्मौदन को पकाता है तो वह वृद्धि को प्राप्त करता है तथा उसके विशिष्ट शत्रु भी पराजित हो जाते हैं - एक अन्य स्थल[3] पर आयुष्य प्राप्ति हेतु इन्द्राग्नी के लिए पशु के आलम्भन का विधान किया गया है। सर्वकामतृप्ति हेतु कहा गया है कि जो चातुर्मास्य यज्ञ का जो सम्पादक करता है और उसकी शक्ति को जानता है वह सभी कामनाओं की पूर्ति करता है ।

1- गो० ब्रा० 2·2·1, 1·4·10;11·12·15, 1·5·20 2·3·4, 2·4·-5 7, 2·6·1·5·12·15 आदि ।

2- गो० ब्रा० 2·1·7 ।

सूत्र ग्रन्थों में विहित पौष्टिक कर्म -

वेदाङ्ग साहित्य में सूत्रग्रन्थों का सामान्य अभिधान कल्प है । कल्प का अर्थ है वेद में विहित कर्मों का क्रमपूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाला शास्त्र-

"कल्पो वेद विहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्"[1]

अर्थात् जिन यज्ञ यागादि तथा विवाह उपनयन आदि कर्मों का विशिष्ट प्रतिपादन वैदिक ग्रन्थों में किया गयाहै । उन्हीं का क्रमबद्ध वर्णन करने वाले सूत्रग्रन्थों का नाम ही कल्प है । कल्पसूत्र मुख्यतः चार प्रकारके हैं-

1- श्रौतसूत्र -

इनमें ब्राह्मण ग्रन्थमों में वर्णित और अग्नि में सम्पाद्यमान यज्ञ यागादिक अनुष्ठानों का वर्णन है । ऋग्वेद से सम्बद्ध आश्वलायन तथा शांखायन शुक्ल यजुर्वेद का एकमात्र कात्यायन तथा कृष्ण यजुर्वेद के बौधायन आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी वैखानस, भारद्वाज, तथा मानव तथा सामवेद से सम्बद्ध लाट्यायन, द्राह्यायन और जैमिनीय तथा अथर्ववेद से सम्बद्ध वैतान श्रौत सूत्रों का अस्तित्व मिलताहैहै।

1- विष्णुमित्र-ऋग्वेद प्रातिशाख्य की वर्गद्वय वृत्ति

2- गृह्यसूत्र -

इसमें गृहाग्नि में होने वाले यागों का तथा उपयन विवाह, श्राद्ध आदि संस्कारों का विस्तृत वर्णन है । ऋग्वेद के आश्वलायन और शांखायन तथा कौषीतक शुक्ल यजुर्वेद का पारस्कर कृष्ण यजुर्वेद के मानव काठक तथा सामवेद के गोभिल, खादिर और जैमिनीय तथा अथर्ववेद से सम्बद्ध कौशिक गृह्यसूत्र प्रमुख उपलब्ध गृह्य सूत्र हैं ।

3- धर्मसूत्र -

इनमें चतुर्वर्ण तथा चतुराश्रम के कर्तव्यों विशेषत: राजा के कर्तव्यों का विशिष्ट प्रतिपादन है । बौधायन गौतम, आपस्तम्ब तथा हिरण्यकेशी धर्मसूत्र प्रमुख धर्मसूत्र है । धर्मसूत्रों में प्राचीनतम ग्रन्थ गौतम धर्मसूत्र माना जाता है जिसका सम्बन्ध सामवेद से है ।

4- शुल्व सूत्र-

इनमें वेदि के निर्माण की रीति का विशिष्ट प्रतिपादन है, और जो आर्यों के प्राचीन ज्यामिति सम्बंधी कल्पनाओं तथा गणनाओं के प्रतिपादक होने से वैज्ञानिक महत्व रखता है । शुल्वसूत्रों का सम्बन्ध श्रौतसूत्रों से है । इन्हें भारतीय ज्यामिति का आदिम ग्रन्थ माना जा सकता है । समस्त विश्व के ज्यामिति शास्त्र के विकास में शुल्व सूत्रों का अभूतपूर्व योगदान है ।

उपर्युक्त सूत्रग्रन्थों में पौष्टिक कर्मों के विधान की दृष्टि से गृह्य सूत्र और धर्मसूत्र विशेष रूप से उपादेय हैं क्योंकि इन दोनों ही सूत्रों का साक्षात् सम्बन्ध मानव के भौतिक जीवन से है । ये मानव के विविध संस्कारों तथा भौतिक उन्नति हेतु प्रतिपादित विविध याज्ञिक विधानों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करते हैं । इसके साथ-साथ ये सूत्रग्रन्थ इन विधि-विधानों की फलश्रुति का ख्यापन करते हैं । अतः पौष्टिक कर्मों के अध्ययन के लिए ये सूत्रग्रन्थ उपादेय एवं परम उपयोगी हैं ।

सूत्रग्रन्थ पौष्टिक कर्मों के विधान की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध हैं । पौष्टिक कर्मों के विवेचन की दृष्टि से कौशिक गृह्य सूत्र को सभी सूत्र ग्रन्थों का प्रतिनिधि ग्रन्थ कहा जा सकता है । कौशिक गृह्य सूत्र वस्तुतः पुष्टि शान्ति तथा अभिचार कर्मों का एक महनीय कोश है । वैदिक वाङ्मय में विहित लगभग सभी पौष्टिक व शान्तिकारक कर्मों का विवेचन कौशिकगृह्य सूत्र में एकसाथ उपलब्ध हो जाता है । सूत्रग्रन्थों में विहित विविध पौष्टिक कर्मों का विस्तृत विवेचन विविध पौष्टिक कर्म नामक अगले अध्याय में किया गया है ।

पौष्टिककर्म मानव की भौतिक उन्नति करने वाले धार्मिक कृत्य हैं । इन कृत्यों में मानव के सर्वविध कल्याण की कामना की गयी है । इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक पौष्टिक कर्म मानव जीवन में अत्यन्त उपयोगी हैं

॥ द्वितीय-अध्याय॥

"विविध पौष्टिक कर्म

पृ0 सं0 61------112

विविध पौष्टक कर्म

वैदिक वाङ्मय में अनेक प्रकार के पौष्टिक कर्मों का वर्णन किया गया है । इन पौष्टिक कर्मों का मुख्य उद्देश्य मानव की सुख समृद्धि में वृद्धि करना है । वस्तुतः सुख दो प्रकार का होता है - लौकिक एवं आध्यात्मिक । लौकिक सुखसमृद्धि के प्रति जन सामान्य अधिक उत्सुक दिखाई पड़ता है। वैदिक युग में मानव याज्ञिक क्रियाओं द्वारा लौकिक व आध्यात्मिक दोनों सुखों की प्राप्ति में विश्वास करता था । इन याज्ञिक क्रियाओं को निर्विघ्न सम्पादित करने के लिए विविध बाधाओं के निवारण के साथ- साथ धन- धान्यादिक समृद्धि की भी आवश्यकता होती थी क्यों कि धन-धान्य से समृद्ध व्यक्ति ही याज्ञिक अनुष्ठानों के सम्पादन में समर्थ हो सकता था । इसी समृद्धि की प्राप्ति हेतु सूत्र-ग्रन्थों में जिन अनुष्ठानों, क्रियाओं व कर्मों का विधान किया गया है । उन्हीं का नाम पौष्टिक कर्म है ।इसका कदापि यह तात्पर्य नहीं है कि पौष्टिक कर्म केवल सूत्र ग्रन्थों में मिलते हैं । पौष्टिक कर्म व उनके बीज तो ऋग्वेद से लेकर सभी संहिताओं व अन्य वैदिक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं । सूत्र ग्रन्थ तो केवल इन कर्मों की व्यवस्था का व्याख्यान प्रस्तुत करते हैं ।

पौष्टिक कर्म सम्बन्धी भावनाओं एवं अभ्यर्थनाओं का प्रारम्भ ऋग्वेद काल से ही प्राप्त होता है । ऋग्वेद से प्रारम्भ हुई यह परम्परा सूत्र ग्रन्थों तक अबाध गति से प्रवाहित हुई है । न केवल वैदिक ग्रन्थों में

प्रत्युत आगम परम्परा व पौराणिक ग्रन्थों में पौष्टिक कर्मों का विकास अत्यन्त स्पष्ट रूप से हुआ है । वैदिक वाङ्मय में प्रतिपादित पौष्टिक कर्म अन्य कर्मों से विलक्षण है, इनकी विलक्षणता क्रिया एवं स्वरूप दोनों दृष्टियों से है । व्यावहारिकता इन कर्मों की विशिष्टता है । प्रधान रूप से पौष्टिक कर्मों को अधोलिखित चार भागों में रखा जा सकता है-

1. साम्पदादि पौष्टिक कर्म
2. कृषि सम्बन्धी पौष्टिक कर्म
3. पशुओं को सम्बन्धित पौष्टिक कर्म
4. अन्यान्य पौष्टिक कर्म एवं पुष्टि प्रदान करने वाले काम्य कर्म

1. साम्पदादिकर्म -

साम्पदादिकर्म का अभिप्राय ऐसे कर्मों से है जिनसे सम्पूर्ण मनोकामनाओं की पूर्ति सम्भव हो सके । कौशिक गृह्यसूत्र में इस कर्म के सम्पादन की विधि का विस्तृत विवेचन किया गया है । पद्धतिकार आचार्य केशव के निर्देशानुसार समस्त पौष्टिक के कर्मों के सम्पादन के पूर्व निऋति कर्म करना चाहिए । इस कर्म का सम्पादन पूर्णमासी तिथि को काला कपड़ा पहन कर सूर्यास्त के समय जल के पास स्थित होकर अथर्ववेदीय[1] सूक्त का पाठ

---

1. अथर्व० 1.1

करते हुए करना चाहिए । नाव के दक्षिण भाग में इस कर्म को सम्पादित करने वाले व्यक्ति को "अपां सूक्त"[1] से जल से सेचन करना चाहिए तथा नये वस्त्र धारण करके मृत पशु के चमड़े के जूतों को छोडकर पीछे की ओर देखते हुए घर आना चाहिए । एक रात्रि घर पर रहकर द्वितीय रात्रि में पुन: साम्पदादि कर्म करना चाहिए । इस कर्म का विस्तृत विवेचन कौशिक गृह्यसूत्र[2] में प्राप्त होता है जिसमें अनेक अथर्ववेदीय मंत्रों[3] का विनियोग बताया गया है ।

इस प्रकार के प्रतिपादित निऋति कर्म के अनन्तर ब्रह्मचारी को "त्रिषप्तीयम्"[4] सूक्त से साम्पदादि कर्म सम्पादित करना चाहिए । इस कर्म में अनुष्ठाता ब्रह्मचारी को उदुम्बर पलाश तथा बेल के काष्ठ से अग्न्याधान करना चाहिए अथवा अपने घर से तृणादिको लाकर अग्न्याधान करना चाहिए । चेटियों की बिल में मेद , मधु, श्यामाक और शणपुष्प का आज्य

---

1. अथर्व 1·4·1 , 5·1 , 6·1
2. कौ०गृ० 3·18·1
3. अथर्व 1·1, 20·1, 5·7·1, 7·115·1,2,3 आदि
4.

के साथ हवन करना चाहिए अवशिष्ट आज्य में चींटियों को बिल की मिट्टी से ग्राम में पहुँचकर पुन: हवन करना चाहिए तथा तिल मिश्रित अन्न का दान करना चाहिए इस कर्म का सविध सम्पादन करने से ब्रह्मचारियों को नये योग्य शिष्यो की प्राप्ति होती है। इस प्रकार के साम्पद कर्म ब्रह्मचारि सम्पद कर्म कहा जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमुख साम्पद कर्म अधो लिखित है-

1. ग्राम साम्पद कर्म -

इस कर्म का विधान व व्याख्यान सूत्रग्रन्थों में अत्यन्त विशद रूप से किया गया है। इस कर्म से समस्त क्रियाएं ब्रह्मचारि साम्पद कर्म की ही भांति हैं। इस कर्म में समिद्धिकार एवं सुरापान की क्रियाएं ब्रह्मचारि साम्पद कर्म से अतिरिक्त हैं।

2. सर्व साम्पद कर्म -

सूत्र ग्रन्थों में इस कर्म का विधान सर्वकल्याण की भावना से किया गया है। यह कर्म भी ग्राम साम्पद का ब्रह्चारि साम्पद कर्म से लगभग मिलता जुलता है। केवल यही कहा गया है कि उदुम्वर पलाश बेर तथा क्षीरोदन पुरोडाश आदि के काष्ठ व रस सर्वकामनाओं की सिद्धि के लिए हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य विधान सर्व साम्पद या सर्वकामना की सिद्धि के लिए है। इसके अनुसार सर्व साम्पदाभिलाषी व्यक्ति अधो लिखित मंत्र से कृष्णमणि को गोवर में सुवासित करके बांधे तथा समान वर्णवाली गाय के दूध में पके भात से पुरुषाकृति बनाकर बारह दिन तक उस पर सम्पात करे-

वान्छ मे तन्वं पादौवान्छाक्ष्यौ वान्छ सक्थ्यौ ।

अक्ष्यौ वृषण्यन्त्या: केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ।।[1]

{ मेरे शरीर की और दोनों पैरों की इच्छा कर मेरे दोनों आँखों की इच्छा कर, दोनों जंघाओं की इच्छा कर, बल्कि इच्छा करती हुई तेरी आँखें और बाल काम से मुझे सुखावें } ।

इसी प्रसङ्ग में निम्न लिखित अथर्ववेदीय मंत्र से मादनक काष्ठ पर पकाये गये क्षीरोदन के भक्षण का विधान किया गया है-

" कथं महे असुराया ब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्ण: ।

पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान्पुनर्मघ त्वं मनसा चिकित्सी: ।।[2]

{ महान शक्तिवान के लिए तुमने किस प्रकार और क्या कहा ? और स्वयं तेजस्वी होते हुए तुमने यहाँ दु:ख हरण करने वाले पिता के लिए किस प्रकार और क्या कहा? हे श्रेष्ठ प्रभो। हे पुन:पुन: धन देने वाले देव । गौ आदिदक्षिणा देते हुए तुमने मन से हमारी चिकित्सा की है ।}

चमस में समान रंग के बछड़े वाली गाय के दूध में व्रीहि तथा यव[3]

---

1 अथर्व० 6.9.1

22 अथर्व० 5.11.1

3. अथर्व० 6.10.1

डालकर चूर्ण बनाकर उसमें शहद मिलाकर खाना चाहिए तथा निम्नलिखित अथर्ववेदीय मंत्र से आहुति देना चाहिए " पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा ।

(पृथ्वी श्रोत्र, वनस्पति तथा पृथ्वी के अधिपति अग्नि के लिए स्वाहा ।)

3. प्रस्थानिक साम्पदकर्म -

प्रस्थान काल में सम्पाद प्राप्ति हेतु इस कर्म का विधान सूत्र ग्रन्थों मेंप्राप्त होता है इस कर्म में कार्बरी वर्ण की गाय के मठे में विशिष्ट प्रकार के पदार्थों का भक्षण कियागया है । इसमें कहा गया है कि मस्तुलंकक धूलक आदि को कपडे में बाँधकर तीन रात्रि तक गाय के गोबर में उसे रखना चाहिए तथा उसको चूर्ण बनाकर उसमें मट्ठा डालकर दधि व मधु मिलाकर खाना चाहिए ।

4. वस्त्र साम्पद कर्म -

इस कर्मका विधान प्रभूत वस्त्र प्राप्ति के लिए किया गया है । सूत्र

---

1. अथर्व 6.10.1

ग्रन्थों में वर्णित है कि अधोलिखित अथर्ववेदीय मंत्र के पाठ से अभीप्सित अर्थ प्राप्त होता है-

यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनुस्वा: ।
अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मेव स्त्राणि विश एरयन्ताम् ।[1]

(जिस प्रभु ने मनुष्य के अन्त: प्रकाश के लिए शरीर को साथ-साथ जोड़ दिया है इसलिए कि उससे अपनी शुद्ध दीप्तियाँ सुवर्ण के साथ फैले । यहाँ अमर नामों को वे धारणकरते हैं । अत: प्रजाएं इसके लिए वस्त्र प्रेरित करें ।)

इस कर्म का सम्पादन करते समय सूत्र ग्रन्थों के अनुसार बेर की लकड़ियो के बने हुए तीन करछले में मकड़े के जाल को लपेटकर घी में डुबोकर आहुति दी जाती है । तथा इसी को मूँज में लपेटकर तथा मधु से सिक्त कर तीन समिधाओं को आहुति देने का विधान प्राप्त होता है ।

5. सामनस्य कर्म -

साम्पदादि पौष्टिक कर्म के रूप में सूत्र ग्रन्थों[2] में सामनस्य कर्म,

---

1. अथर्व0 5.1.3

2. द्र. कौ0गृ0सू0 12.5

का विधान प्राप्त होता है । इस कर्म का सम्पादन सद्योत्पन्न पुत्र की समृद्धि हेतु किया जाता है जिससे वह जब तक जीवित रहे तब तक उत्पन्न सगोत्रों में सौमनस्य बना रहे । सौमनस्य के अभिलाषी व्यक्ति को जलकुम्भ व सुरा कुम्भ को गाँव से ले जाकर बहि: क्षेत्र में निनयन करना चाहिए ।

6• कुमारीवर्चस्व कर्म -

सूत्र ग्रन्थों[1] में वर्चस्वकर्म भी पौष्टिक कर्मों के अन्तर्गत वर्णित हैं । वर्चस्व कर्मों में कुमारी वर्चस्वकर्म प्रमुखपौष्टिक कर्म है । इस कर्म का सम्पादन करते समय अधोलिखित मंत्र से उदुम्बरको समिधा का आधार करना चाहिए -

"तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रास्त्वेषनृम्ण: ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमा: ।।

[2] ॥ वह निश्चय से भुवनों में श्रेष्ठ ब्रह्म था, जहाँ से उग्रतेजो बल से युक्त सूर्य उत्पन्न हुआ । यह तत्काल प्रकटहोते ही शत्रुओं का नाशकरता है । इस कारण इसको प्राप्त करके सब संरक्षक हर्षित होते हैं ।

कुमारी के दायें जंघे को अभिमंत्रित करके शान्त पशु की वपा की

1• द्र०कौ०गृ०सू० ।2•10 और आगे

2• अथर्व० 5•3•।

आहुति देना चाहिए तथा अग्नि का उपस्थापन भी करना चाहिए। अधोलिखित मंत्र से दधि एवं मधु खिलाना चाहिए तथा क्षीरोदन मिलाकर क्षत्रिय एवं वैश्य को भक्षण हेतु देना चाहिए।

" प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रंहवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्र हवामहे ।।"[1]

(प्रातः काल अग्नि को, प्रातः काल में इन्द्र को, प्रातःकाल के समय मित्र और वरुण को तथा प्रातः काल अश्विनी देवों को हम स्तुति करते हैं। प्रातःकाल पूषा और ब्रह्मणस्पति नामक भगवान को प्रातः काल सोम और रुद्र को हम प्रार्थना करते हैं।

7. हस्तिवर्चस कर्म -

इस कर्म का सम्पादन करते समय सर्वप्रथम अग्नि का उपस्थापन किया जाता है। इसके अनन्तर हस्तिदन्त को आज्य तंत्र से बाँधा जाता है। इस कर्म का प्रारम्भ वर्चः प्राप्ति सूक्त से किया जाता है -

" हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद्यशो अदित्या यत्तन्वः संबभूव।
तत्सर्वे समदुर्मह्यमेतद्विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ।।"[2]

---

1. अथर्व0 3.16.1

2. अथर्व0 3.22.1

है जो अदिति के शरीर से उत्पन्न हुआ है वह हाथी के बल के समान बड़ा यश फैले । यह यह यश सब एक मनवाले देव और अदिति मुझे देते हैं ।

लोम को लाक्षा से ढंककर तथा सोने से बाँधकर वर्चस्वगण के "सिंहे व्याघ्रयशो हवि:"[1] मंत्र से स्नातक को सिंहव्याघ्र काले श्रेष्ठ बैल की नाभि के लोमों को वृक्षों के उण्डो की भाँति संयुक्त करना चाहिए ।

8• कृषि सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

सम्पूर्ण वैदिक वाङमय में कृषि सम्बन्धी कर्मों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है । वस्तुत: वैदिकयुगीन आर्यों का मुख्य व्यवसाय कृषि था । अत: कृषि के समृद्धि की प्रार्थना पदे- पदे की गई है । सूत्र ग्रन्थों में यही कारण है कि विविधप्रकार के कृषि सम्बन्धी पौष्टिक कर्मों का विधान प्राप्त होता है । कौशिक ग्राह्यसूत्र में हल जोतना, ब्रज बोना गायों एवं बैलों की समृद्धि प्राप्ति का वर्णन किया गया है । हल जोतने से सम्बद्ध पौष्टिक कर्म में अधोलिखित मंत्र पढकर हल जोतने वाला हल के दाहिने भाग में बैल जोते-

" सीरा युन्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नयो ।।"[2]

1• कौ०गृ०सू० 20•1-23

2• अथर्व 3•17•1

(देवों में बुद्धि रखने वाले कवि लोग सुख प्राप्त करने के लिए हलों को जोतते हैं और जुओं को अलग- अलग करते हैं ।)

इसके पश्चात् " अष्टारमूप्रजनयितारं " मन्त्र पढकर दाहिने युग - धुरि में उत्तरस्यां युग धुरि सेवतारमेव एहि पूर्वक " से बैल जोते ।

" युनक्त सीरा वियुगातनोत कृतेयोनौ वपतेहवीजम् ।

विराज: श्रुष्टि: सभरा असन्नोनेदीय इत्सृण्य: पक्कमा यवन ।।[1]

(हलों को जोडो जुओं को फैलाओ, बने हुए खेत में यहाँ पर बीज बोओ । अन्न की उपज हमारे लिए भरपूर होवे हँसुए भी परिपक्वधान्य को हमारे निकट लावें) ।

उपर्युक्त मन्त्र को पढकर जोतने वाले से कहे कि तुम खेत जोतो और अलग- अलग सीरों को करके जोते । ऐसा कहने पर कर्षक खेतो को जोते । " अश्विनाफालम् "[2] इत्यादि मंत्र से फाल को अभिमंत्रित करे । " इरावानसि "[3] मंत्र से खेत को नापकर जोते । " अपहता प्रतिष्ठा "[4] इत्यादि मंत्र से

1• अथर्व0 3•17•2

2•4 कौ0गृ0सू0 20/18 प्राप्त संहिताओं में अप्राप्त

फाल को अमृषो से परिवेष्टित करके जोते । "लाङ्गलमुपवीरवत्"¹ मंत्र पढ़ते हुए जोते । जब तक पूरा सूक्त समाप्त न हो जाय तब तक स्वयं कर्त्ता को जोतना चाहिए । इसके बाद कर्षक को जोतना चाहिए । "अभिवर्षतु निष्पद्यतां बहुधान्यम् आरोग्यम्" इत्यादिकल्याणकारी बातों को तब तक बोले जब तक तीन सीस पश्चिम की ओर न जोते ले । "सीतेवन्दामहेत्वं इत्यादि से आवर्त्तन करके पुरोडाश से इन्द्र देवता की पूजा करे । अश्विनौ देवता को स्थालीपाक से पूजा करे । सीराओं पर आहुतियों की धारा देवे। जल पात्र को उत्तरदिशा की ओर रखे हरी घास की आहुति कर हलों का प्रक्षालन करके जहाँ से सम्पात को लावे वहासे ढेला ले आने वाले व्यक्ति से पत्नी पूछे तुमने जोता । कारयिता कहे, कि मैं सम्पातों को जोतता हूँ । मिट्टी के पिण्ड को लेकर रखे । पत्नी से पूछे "अकृषाम्" । फिर पत्नी से पूछे मा हार्षी उत्तर में पत्नी कहे वित्तिभूति पुष्टिपशु अन्न और गेहूँ । मध्य के सीस के ढेलों को लेकर उत्तर में अश्विनौ देवता को स्थाली पाक से पूजे । पूजनोपरान्त उत्तर की ओर सम्पातित जल से दूसरे दिन प्रात: काल को आयोजना करे तथा सीता के अग्रभाग पर कुशों को बिछाकर प्लक्ष एवं गूलर के तलन तीन - तीन ईंधन को डाले । रस वाले ईंधन को दक्षिण में, शस्य वाले ईंधन बीच में तथा पुरोडाश वाले ईंधन को उत्तर में डाले । कुशों को

---

1. अथर्व 3.17.3

टेढाकरके चमसो पर डालो इस प्रकार यह सम्पूर्ण कर्म करे । यह पूरा एक ही कर्म है । इसे कृषि निष्पत्ति कर्म कहते हैं । इस विधि से करने पर कृषि की पुष्टि होती है ।

9· वृषभलाभ पौष्टिक कर्म -

जिस व्यक्ति को बैल के लाभ की आवश्यकता हो वह यह कर्म को करे । यद्यपि इसको भी साम्पदकर्म कहा जा सकता है परन्तु इसका वर्णन कृषको के लिए ही है । अतः यहीं इसका वर्णन उचित है । इसमें अनुडुत्साम्पदकाम" व्यक्ति को सारूपवत्सा गौ के गोवर के पिण्डों को गुग्गुल लवण में मिलाकर खाने के लिए कहा गया है इससे वृषभ लाभ होताहै ।[1]

10· बीज पवन कर्म -

गृह्यसूत्रों में इस कर्म का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है । यह कृषि कर्म का महत्त्व पूर्ण कर्म है । विधानों के अनुसार इसका सम्पादन करने से अन्न की पुष्टि होती है कौ.ग. के अनुसार -

"उच्छयस्व बहुर्भव स्वेनम महसा यव ।
मृणो हि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ।।"[2]

(हे यव । अपनी महिमा से ऊपर उठ और बहुत हो, सब वर्तनो को भर दे । आकाश की बिजली तेरा नाश न करे ।)

1· कौ0गृ0 24·1

उपर्युक्त मंत्र से बीज को अभिमंत्रित करके बोने के लिए खेत में ले जावे और उसमें से तीन मुट्ठी लेकर खेत में रखकर उसे मिट्टी से ढंक देवे और तब तैयार खेत में अति श्रद्धा से बीज बोवे ।

।1॰ पशु सम्बन्धी पौष्टिक कर्म -

वैदिक वाङ्मयके अनेको स्थलों में इसका उल्लेख मिलता है सूत्र साहित्यमें कौशिक गृह्यसूत्र[1] इसकी विस्तारसे चर्चा करता है । इसमें निम्नलिखित पौष्टिक कर्म आते हैं-

।2॰ गोपुष्टिकर्म -

इसके अनुसार गोपुष्टि के इच्छुक व्यक्ति को " अम्बयोयन्ति[2] इत्यादि ऋचा से गायो को लवण पिलावे । इससे गाये रोग रहित तथा हृष्ट पुष्ट होती है । परन्तु लवण देने के बादजल अल्प मात्रा में भी नहीं देना चाहिए गायों के बच्चे हृष्ट पुष्ट एवं निरोग हो ऐसी कामना से युक्त व्यक्ति यह कर्म करे । गाये दुधवा ी हो, रोगरहित हो इसके लिए ज्वरगण्डमालादि रोगों में तथा गायों के गर्भधारण के लिए भी यह कर्म होता है ।

1॰ कौ0गृ0।8-2। मूल तथा आचार्य केशव की टीका

2॰ अथर्व0 1॰4॰1 द्र0 कौ0गृ0 19॰1

11· गोष्ठकर्म -

यह भी पौष्टिक कर्म है क्यों कि गोशाला की समृद्धि भी कृषकों के लिए अत्यावश्यक होती है । इस कर्म को एहयन्तु"[1] इस मन्त्र से श्लेक्ष्य निश्रित पीयूष को गोष्ठकर्म करने वाला व्यक्ति खावे । ब्राह्मण को गौ देवे । जलपात्र को अभिमंत्रित करके गोशाला में लावे । गोशाला के भीतर के स्थान को पन्चभूसंस्कारो सेप विकृकरके धूल के ढेर के आधे भाग को दक्षिण दिशा में फेकदेवे । समान रूप के बछडे वाली गौ के गोवर को गुग्गुललवण में डालकर अग्नि के पश्चिम भाग में डाल देवे । तीन माह बीत जाने पर प्रात: उसे उखाड़कर खावे । विकृत होने परही उपभोग योग्य समझना चाहिए ।

111 गोशान्ति पौष्टिक कर्म -

जब गाये चरकरगोशाला में आवे तो " आ गाव "[2] से प्रत्युपस्थापन करें । वर्षाऋतु में इन्द्र को आहुति देवे तथा प्रजापति को आज्य देवे । "कर्कीप्रवाद[3] मंत्रों से द्वादश नामवाली " सूर्यस्यरश्मीक:"[4] इत्यादि से सम्पातित करके "अयम् घास इह वत्सा निवहनीय:" इत्यादि से बच्चो को बाधे तथा घास खाने को दे इस प्रकार यह गो शान्ति कर्म गौ तथा बछडे का उपर्युक्त रीति से करना चाहिए ।

1· अथर्व0 2·26·1

2· तदैव 4·21·1 द्र0 कौ0गृ0 21·11 मूल मात्र

3· कौ0गृ0 21·11

4· अथर्व0 6·14·1+

4. अन्यान्य पौष्टिक कर्म एवं पुष्टिप्रदान करने वाले काम्यकर्म -

इसके अन्तर्गत उन कर्मों का वर्णन किया जा सकता है जिसमें पुष्टिसम्बन्धी भावनाएं सन्निहित हो एवं उन काम्य कर्मों को भी संगृहीत किया जा सकता है एवं उन काम्य कर्मों को भी संगृहीत किया जा सकता है जो पुष्टि की भावना से ओत-प्रोत हों यथा-

1. चित्रा कर्म
2. समृद्ध कर्म
3. आग्रहायणी कर्म
4. विभाग कर्म
5. स्पातिकरण कर्म
6. रस कर्म
7. शाला पौष्टिक कर्म
8. अष्टका कर्म
9. अस्पष्ट पौष्टिक कर्म
10. पुष्टिदाता काम्य कर्म

चित्रा कर्म -

यह भी एक पौष्टिक कर्म है। इसका वर्णन गृह्यसूत्रों[1] में विस्तार से

---

1. कौ॰गृ॰सू॰ 18.19-26, 23.12-16

मिलता है । कौ०गृ०सू० 18•19-26 के अनुसार चित्रा पौष्टिक कर्म को चैत्र की पूर्णिमा या चित्रा नक्षत्र में करना चाहिए । वायुरेना[1] तथा "त्वष्टा म० " इन दोनों सूक्तों से रात्रि में यह कर्म करे । स्थालीपाक का भक्षण करे । प्रादेश की माप करने वाली समिधाओं को जल में भिगो कर आधान करे । नाव वाली दो नदियों के संगम पर अग्निरक्षकर उसके पश्चिम भाग में भूमि पर रेखा करके पशु की भाँति खावे । तीन रात्रि तक नित्य घृत खावे । खाने वाला व्यक्ति" शम्भुमयोभुभ्यां " इत्यादिसलिलगणों से क्षीरोदन खावे ।

कौ०गृ०सू० 23•12-16 के अनुसार "त्वष्टा म०[2] " मन्त्र से चित्राकर्म की रात्रि में जो कर्म किया गया हो, वहाँ "वायुरेना:[3] " से संभारों को एकत्र करे । दूसरे दिन संपातित शाखा के जल से गाय के चारों ओर परिक्रमा करे। उसी वर्ष में उत्पन्न बछड़े के दोनों कानों को काटकर उत्पन्न रुधिर को आग्न्याधानों में रखता जाय । " यथाचक्र " इत्यादिमन्त्र से इक्षुकाश के काण्ड से मार्जन कर उसमें रस मिलाकर पान करावे ।

समुद्र कर्म -
======

इसका वर्णन कौ०गृ०सू० 18•32•-38 एवं 22•14 में प्राप्त होता

1• अथर्व० 6•141•1

2•3 अथर्व० 6•141•1

यह भी पौष्टिक कर्म है। यह कर्म समस्त पुष्टियों कोप्राप्त करने के लिए किया जाता है। प्रथम स्थान परइसका सामान्यप्रतिपादन किया गया है परन्तु द्वितीय स्थानपर इसका प्रतिपादन शत्रु के निमित्त हुआ है। यह कर्म निम्न है।

समृद्ध कर्म करने के निमित्त अभ्यातानान्त कर्म करके चार फूल की पलाश की समिधाओं का तथा चार कुशों का क्रमशः{ पहले समिद्भारक तब दर्भ भारक} 8 बार आधार करके " ब्रह्मजज्ञानेन सहस्रधारेण " मन्त्र से आज्य की आहुति देवे। आज्यहोम के बादतात्रिकाग्नि का भक्ष करे। पलाश के डंडे में अग्नि के संयोग से " त्विलिसिलिका "[2] मन्त्र से प्राशन करे। सांत्रिक अग्नि का प्रणयन करके या यज्ञस्थान में यह कर्म करे। इस कर्म काफल धान्य, लक्ष्मी पुत्र यश, मेधा, धर्म, आयु, बल, प्रजा, सम्पद् एवं ग्राम, कूपादि की प्राप्ति होती है। शत्रु की समृद्धि इत्यादि प्राप्त करने के लिए " ममाग्ने वर्चः "[3] इत्यादि ऋचा से सात्रिक{ या त्रिक} अग्नियों कोदर्भपूतिक भाग द्वारा परस्तरण करके अर्थात् शत्रु देश में जाकर गार्हपत्य अग्नि में अभ्यातानान्त आहुति करके " ममाग्ने वर्च० "[3] इत्यादि ऋचा से सारूपवत्सा गौ के दूध को गर्म

---

1. द्र०कौ०गृ०सू० टीका
2. अथर्व० 5.3.1
3. तदैव

करके तथा उसे उतारकर उत्तरतन्त्र करके प्रतीक दर्भ से स्तरण करे तब अन्याताधानान्त करके पुनः दूध को अग्नि पर रखकर एवं उतारकर आहवनीयाग्नि के पास स्तरण करे । एक बार अभिमन्त्रण करके उसी दूध को खाये तदनु गार्हपत्य प्रभृति उत्तर तन्त्र करे । गार्हपत्य देश में भोजन करे उत्तर तन्त्र एवं व्रतग्रहणादि करे । दाक्षिणाग्नि गार्हपत्याग्नि एवं आहवनीयाग्नि में क्रमशः व्रत ग्रहण करे गार्हपत्याग्नि का स्तरण कुशों से दाक्षिणाग्नि का पूतीक काष्ठों से तथा आहवनीयाग्नि भाग - - - - - से स्तरण करे ।

आग्रहायणी कर्म -

यह कर्म मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को होता है । इसमें अन्याताधानान्त हवन करके चार चरु कसे स्थाली पाक से पकाये और " सत्यं बृहद्"[1] अनुवाक् से अग्नि के अगले भाग (पश्चात् भाग) में गाढे में कुशों पर एक चरु की एक बार सर्वहुति आहुति देवे । दूसरी चरु को खावे तथा तीसरी को स्थाली पाक से पकाकर- सत्यंबृहद्"[2] इत्यादि सात ऋचाओं द्वारा और भूमे मातर्नि" इत्यादि पाठवी ऋचा से तीन बार आहुति देवे । अग्नि के पश्चिम में वस्त्र बिछाकर " विमृगवरी:"[3] इत्यादि ऋचा से उस पर बैठे " या स्ते[4] शिवा०

---

1. अथर्व 12·1·29
2. तत्रैव ~~12·1·34~~ 9·2·25
3. तत्रैव 12·1·34
4. तदेव 9·2·25

इत्यादि ऋचा से उस पर बैठे "या स्ते शिवा" मन्त्र से भली भाँति श्वेत वस्त्र पर बैठे "यच्छयान:"[1] मन्त्र से अपने स्थान को लौट आवे। "सत्यं वृहद्"[2] इत्यादि नौ तथा शान्ति वा" इत्यादि दशवीं ऋचा से उपस्थानकरे। "उद्वयं"[3] ऋचा से शयन से उठकर जावे। "उदरायणा"[4] मन्त्र से तीन पग पूर्वओर उत्तर को बाहर निकल कर यावत्त"[5] मन्त्र से देखे। ऊँचे स्थानसे चढ़कर वहाँसे देखे। अग्नि केपूर्वभाग में हल कोरखकर जलपात्र से "सत्यं वृहद्"[6] इत्यादि सम्पात वाले मन्त्र को से जल का सेवन करे "यस्या सदोहव विधाने[7] इत्यादि तीन ऋचाओं से आज्याहुति देवे। तदनु उत्तरतन्त्र करे। मुझे उत्कृष्ट फल की प्राप्ति से इत्यादि सर्वफलकामी पुरुष की कामनाये सिद्ध होगी। "यस्यामन्नं"[8] से भूमि का उपस्थान करे।

---

1. अथर्व0 12.1.34
2. अथर्व 12.1.1
3. -" 7.53.7
4. " 12.1.28
5. " 12.1.33
6. " 12.1.1
7. " 12.1.38
8. " 12.1.42

"निधिं बिभ्रति"[1] इत्यादि ऋचा से पृथिवी का उपस्थापन करे। वर्षा काल में नूतन जल को "यस्यां कृष्णमरुण"[2] से अभिमन्त्रित करके आचमन करे। इस जल को सिर पर रखे। "यं त्वा पृषतीरथे"[3] इत्यादि मंत्र से धौ को पृषतीनाम की गौ कहा गया है। आदित्य को रोहित और ब्राह्मणको गौ देवे। गौ के दूध में ओदन पकाकर सर्वाहुति करे। पुष्टि-कर्मों के आरम्भ में एवउपस्थान में इन्हीं मंत्रों काप्रयोग करना चाहिए। सलिलगण के मंत्रों से सर्वकामनायें सिद्ध होती है।

विभाग कर्म-
========

इसका वर्णन कौ०गृ०क० 21·15 में कियागया है। यह पौष्टिक कर्म है। "उतपुत्र·"[4] मंत्र से पिता ज्येष्ठपुत्र से अवसान अर्थात् घर का विभाजन करावे। ज्येष्ठपुत्रघर बनाकर उसी में अवसान कर्म करे। हाथ- पैर धोकर "अर्धमर्धेन"[5] मंत्र से ददामि ऐसा समझ कर देवे। शान्त वृक्ष की शाखा से गौ आदि के भागों को लेकर देवे। विभक्त हुये पुत्रगण अपने- अपने घरों में प्रति अग्नि में शान्तवृक्ष कीशाखा को बांधे। इस शाखा की तीनसमिधाओं को

1· अथर्व 12·1·44

2· अथर्व० 12·1·52

3· अथर्व० 13·1·21

4· अथर्व० 5·1·8

5· अथर्व० 5·1·9

अग्नि में डाले । अगणित पूड़िया पकावे तथा उनमें से सात पूरियों को लेकर अग्नि में आहुति देवे । तथा " त्वष्टा म॰ "[1] मंत्र से प्रातः काल दायादों को बाँटता हुआ स्वयं भोजन करे तथा " ज्यायु " को अपने अंग में बाँधे तथा दण्ड को भूमि पर डालकर तथा मार्जन कर धारण करे ।

स्फातिकरण कर्म -

इसका वर्णन कौ०गृ० सू० 21॰। में प्राप्त होता है । यह कर्म पदार्थ वृद्धि मूलक है । इस कर्म में " पयस्वती "[2] मंत्र का विनियोग होता है । शान्तफल, शिलाकृति, मिट्टी का टुकड़ा , दीमक के मिट्टी का रेणु तथा 3 कुदों के प्रान्तों को पलाश के पत्ते में कुश के साथ लपेट कर बाँधे और अन्नागार या अन्नों के ढेर पर रखे । अन्न को नापकर सायंकाल भोजन करे । मनुष्य के हिसाब से अधिक अन्न कोष्ठागार में रखे और शेष को आहुति देवे । जब- जब ओदन पकावे तब- तब उसे अभिमंत्रित करे । और जब- जब छाँटने, कूटने, साफ करने, पकाने परोक्षण करने तथा छानने का काम करे तब- तब उसे अभिमंत्रित करे । " अयं नो नभस्पति "[3] मंत्र से धान्यराशि में पत्थर को सम्प्रोक्षित करके प्रत्येक ऋचा से निर्वाप करे । इससमय दूसरा व्यक्ति आवपन करावे । यह स्फातिकर्म है ।

1॰ अथर्व 6॰4॰।

2॰ अथर्व 3॰24॰।

3॰ अथर्व0 6॰79॰।

रस कर्म -

इसका वर्णन कौ०गृ०सू० 21·23 में किया गया है यह भी एक प्रकार का पौष्टिक कर्म है इस कर्म में "त्वेक्रतु·"[1] मंत्र से रस-प्राशन किया जाता है इसमें विनियुक्त" स्तुष्व वर्ष्मन"[2] ऋचा के प्रजापति देवता है । इससे अमावस्या को सूर्यास्त हो जाने पर दीमक की मिट्टी के राशि(ढेर) पर कुशों को बिछाकर उस पर ण्ड रख कर उसमें अग्नि स्थापन करे तथा दीपक जलाकर तीन बार आहुति देवे । चावल के सम्पातों को लेकर रसों से उसे उपसेचन करके खावे और पूर्वमासीको आज्य से उपसेचन करके खावे । इसमें शान्त वृक्ष का प्रयोग होता है । ऋधड इत्यादिमंत्र से मिश्रधान्य को भूनकर उसके सत्तू को लोहित(रक्त चन्दन) से अलंकृत करके रस को मिला कर खावे। बिना भुने हुये मिश्रधान्य सत्तू को अग्नि के उत्तरभाग में प्लक्ष एवं गूलर के तीनचमसो के पूर्वाह्न के समय" पूर्वस्यतेजसा गममन्नस्य प्राशिषम्" से तथा " मध्यन्दिनस्य तेजसा मध्यमन्नस्य प्राशिषम्" से मध्याह्न के समय , "तथा अपराह्णस्य तेजसा सर्वमन्नस्य प्राशिषम्" से अपराह्ण के समय आहुति देवे । यही रस कर्म का विधान है ।

शाला पौष्टिक कर्म -

यह नूतन गृह सम्बन्धी पौष्टिक कर्म है घर चाहे पत्थर काष्ठ

1· अथर्व 5·2·3

2· अथर्व 5·2·6

3· अथर्व 5·1-1, 2/1

फूस या ईंट का हो । सबके लिये यही पौष्टिक कर्म करणीय है । "यद्गुषि यज्ञ"[1] मंत्र से घृत एवं मधु का भक्षण नये घर में प्रविष्ट होने वाला व्यक्ति करे । "दोषगायेति"[2] से दूसरी उपर्युक्त दोनों से तीसरे[3] और अनुमति" ऋचा से चौथी आहुति देवे । शाला को तर्जनी एवंमध्यमा अगुलियों से प्रोक्षित करके गृहपत्नी के भोजनालय वाले घर में बैठ कर जल पात्र लावे । "इहैवस्व:[4]" वाक्संयम कर मौन रहे । सूखे गूलर के ईंधर से " उध्वीं स्य· " मंत्र से पकाकर 8 ईश्म बनाकर अग्नि में डाले और आज्य से हवन करके धूम लेवे । यह शाला सम्बन्धी पौष्टिक कर्म का विधान है ।

अष्टका कर्म -

इस कर्म की गणना भी कौ०गृ० 19·28 में पौष्टिक कर्म के अन्तर्गत ही की गयी है । इसको माघ मास की अष्टमी को करना चाहिए । यज्ञोपवीती होकर, यज्ञशाला निवेशनार्थ पंचभू संस्कार को करके व्रत रखकर स्नान करके माथधाकर, नये वस्त्र को धारण करके रात्रि में करना चाहिए । पाकयज्ञ विधान से धान आदि को पकाकर आज्य भागान्त हवन करके अग्नि के पूर्व-भाग में पश्चिम की ओर गौ को खड़ाकरे । अग्नि के पश्चिम की ओर पूर्वा-

---

1· अथर्व 5·26·1

2· तत्रैव 6·1·1

3· तत्रैव 7·20·6

4· अथर्व0 7·60·7

भिमुख होकरअन्वारब्धयुक्त शक्तिजल तैयार करे[1]। प्रथमा हव्युऽवास[2]" इत्यादि सम्पूर्ण सूक्त से घृत की आहुति देवे। दो बारपढ़करआहुति देवे। इसके अनन्तर मांस हवन में "प्रथम हव्युऽवास" इत्यादि पूरे सूक्त से 3 बार आहुति देवे। फिर इसी सूक्त से स्थालीपाक ी आहुति देवे इन क्रियाओं के साथ आज्ययुक्त आहुति देकर अग्नि के पश्चिम भाग में वाक् संयम करबैठे महाभूतों के गुणों कावर्णन करता रहे जिससे नींद न आवे। इस प्रकार अष्टका कर्म करना चाहिए।

अस्पष्ट पौष्टिक कर्म -

कौ०गृ० सं० 24•/3-18 तक एक ऐसे पौष्टिक कर्म का विधान है जिसका स्वरूप अस्पष्ट है। साम्य कीदृष्टि से शाला कर्मसे इसका कुछ साम्य है। परन्तु इसका उल्लेखपृथक करना ही उपयुक्त है। कौ०गृ० 24/3-18 के अनुसार उच्च स्थान में जाकर अभ्यातानान्त करके "अभित्य•[3]" इत्यादि चार ऋचा वाले सूक्त से जलपात्र रखकरउसमें सोमरस मिलाकर सारूपवत्सा गौ के दूध में ओदन पकाकरअभिमंत्रण करके भोजन करे। तदनु उत्तर तंत्र करे। यह कर्म मण्डप के पूर्वएवं पश्चिम द्वार पर करे। काले मृगचर्मपर सोमखण्डों को बिखेर देवे। सोमरस मिश्रिताज्य से स्थालीपाक को खावे। यदि वह सोमरसमिश्रित

1• अथर्व 5•27•1

2• अथर्व 3•10•1

3• अथर्व0 7•14•1

सम्पात स्वयं जल जावे तो मनोरथ को सम्यक् समझना चाहिए । " तां सविता:[1] " मंत्र से दृष्टि को बांधे " सं मा सिन्चन्तु[2] " मंत्र से सर्वोदक में मिश्रधान्य को पकाकरवावे । " दिव्यं सुपर्णं[3] " इत्यादि से सर्वाधिक मजबूत गौ की वपा से इन्द्र की पूजा करे । अधोमुख करके उसका आच्छादन करे । तथा टुकड़े- टुकड़े करके ब्राह्मणों को भोजन करावे ।

इसके बाद दूसरी जगह जाकर " उर्ज बिभ्रदिति[4] " का जप लौट कर घर के पास जाकर करे । बायें हाथ से समिधाओं एवं दायें हाथ से छप्पर को छूकर मंत्र का जप करे " सुमंगलि----- सुनीमे[5] " इत्यादि ऋचा से घर के स्थूणा को पकड़कर उपस्थान करे । "यद्वदामि[6] " से घर वालों से प्रिय वचन बोले । गृहस्वामिनी के घर में उदपात्र का चुपाचाप निनयन करे उपवासकरने वाला व्यक्ति " इहैवस्त·[7] " से घर के मनुष्य को देखे । " सुयवसाद[8] " मंत्र से

1· अथर्व0 7·15·1

2· अथर्व 7·33·1

3· अथर्व0 7·39·1

4· अथर्व 7·60·1

5· द्रष्टव्य कौ0सू0 क0 39·/9, क0 76/24, 76/ 3, 24/13

6· अथर्व 12·1·58

7· अथर्व0 7·60·7(6·73·3)

8· अथर्व 7·73·11 (9·10·20)

सुन्दर घास इत्यादि से युक्त स्थानपर गवादिपशुओं को स्थापित करें । दुर्वाग्र केसाथ जल को पत्नी की अंजलियों मेंरखकर "दाली सूक्त" सेपाशदेवता का उपस्थान करे ।

कामयात्मक पौष्टिक कर्म -

इस वर्ग में उनकर्मों का वर्णन किया गया है जो किसी कामना से किये जाते हैं एवं पुष्टि की भावना भी निहित रहती है । अतः इन्हें काम्यात्मक पौष्टिक कर्म कहने में कोई आपत्ति नहीं है । ये निम्न हैं-

कुल की पुष्टि चाहने वाले व्यक्ति को ऋतुमती स्त्री के रुधिर को तर्जनी एवं मध्यमा अगुलियों से पीना चाहिए ।

खेत की कामना करने वाले व्यक्ति को वांछित क्षेत्र में जाकर जल, दधि एवं मधु मिलाकर खाना चाहिए । एक वर्ष तक स्त्री के पास न जाकर जल, दधि एवं मधु मिला कर खाना चाहिए । एक वर्ष तक स्त्री के पास न जाकर सीप में अपने वीर्य को एकत्र कर तथा उसमें चावल मिलाकर खावे तो उसे ग्राम का लाभ होता है। द्वादशी से लेकर अमावस्या तक केवल खीर खावे । अमावस्या को दही एवं मधु खावे । द्वादशी से अमावस्या तक के तीन दिनों में क्षीर खावे । "क्रव्यादं नाडी"[2] §6 इत्यादि मंत्र की हवन करे। रात्रि में

1· टीकाकार दारिल ने इसको परिभाषित नहीं किया है परन्तु इनमें 6 ऋचा मानी गयी है जो संभवतः अथर्व0 7·81·1-6

अब्राह्मी धान के चावलों में व्रीहि तण्डुल मधु एवं श्यामाको मिलाकर तीन बार कंडे पर पकाकर खावे तो इससे समृद्धि की प्राप्ति होती है । ऐसा कांकायन आचार्य का मत है ।

आयुष्य कामनावाले व्यक्ति को "विश्वेदेव•"[1] इत्यादिऋचा से चरू की आहुति देनाचाहिए तथा उपस्थान करना चाहिए । इससे उसकी आयु 100 वर्ष की हो जाती है । पुष्टिचाहने वाले एवं सम्पत्ति चाहने वाले व्यक्ति को क्रमशः "इन्द्रं जनासः"[2] मंत्र से "द्यावापृथिवी "के लिए यज्ञ करना चाहिए पौरूष की कामना करने वाले राजा के लिए "इन्द्र[3] जुषस्व" इत्यादिऋचा से अग्नि में आहुतिदेना चाहिए । तमतायेच्छुक व्यक्ति को "इन्द्रमह"[4] से अग्नि में आहुति देना चाहिए । "उदेनमुत्तरं"[5]ऋचा से ग्रामेच्छुक व्यक्ति अग्नि में आहुति देवे । ग्राम सम्पत् के लिए पलाश की समिधाओं का आधानकरे । तथा घृत रखकर आस्तरणो की आहुति करे । यश की कामना वाले व्यक्ति को "यशसं मेन्द्रो"[6] से चरू की आहुति देनी चाहिए । कूप, तडाग वापी तथा बाँधदेना इत्यादिकी कामना वाले व्यक्ति को "महममापो"ऋचा बन्धन चाहिए तथा उपस्थान करना चाहिए ।

1• अथर्व 1•30•1 द्रष्टव्य को0गृ0क 52•18

2• अथर्व 1•32•1

3• अथर्व 2•5•1

4• अथर्व 3•15•1

5• अथर्व 6•5•1, 6•1 7•91•1

सन्तान की इच्छावाले व्यक्ति को "आगच्छत्[1]" आदि ऋचा से इन्द्र की आहुति एवं उपस्थान करे। बैल की कामना वाले व्यक्ति को "वृषेन्द्रस्य[2]" मंत्र से इन्द्र की आहुति एवंउपस्थान करना चाहिए। सार्वभौम सम्राट की इच्छा से युक्त होने पर "अत्वाहार्षध्रुवाद्यौः[3]" से इन्द्रार्थ आहुति देवे एवं उपस्थान करे।

मनुष्य एवं पशु की कल्याण की इच्छा से व्यक्ति को "त्यमू षु त्रातार आ[4] मन्द्रै" ऋचा से इन्द्र के लिएआहुति एवं उपस्थान करना चाहिए। सम्पद् चाहने वाले व्यक्ति को "समास्त्वाग्नऽऋतयऽर्धन्त[5]" ऋचा से अग्नि की आहुति एवंउपस्थानकरे। पृथ्वी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ आदित्य, दिशाये एवंचन्द्रमा आदि8 देवताओं के लिए 8 अलग - अलग चल्पकाकर पृथिव्यां[6]" मंत्र से आहुति देवे और उपस्थान करे।

---

1. अथर्व 6·82·1
2. अथर्व· 6·86·1
3. अथर्व 6·87·1, 88/1
4. अथर्व 7·85·1, 86/1, 117/1 द्रष्टव्य कौ0गृ0क0 25·36 की टिप्पणी
5. अथर्व, 2·6·1, 7·82·1
6. अथर्व0 4·39·1

यह कृत्य सर्वकामना की पूर्ति के लिए करना चाहिए । इसके अतिरिक्त सर्वकामी व्यक्ति " तदिदासे"[1] मंत्रसे अग्नि एवं इन्द्र को आहुति एवं उपस्थान करे । तथा इन्द्र, अदिति एवं बृहस्पति देवताओं को "यस्येदमा"[2] ऋचा से आहुतियां तथा उपस्थानकरे तथा "सवितारम्"[3] ऋचा से सूर्योदय होने पर सोते हुए ब्रह्मचारी को जगाकर उठा देवे । सूर्योदय तक सोते रहने पर यह प्रायश्चित्त है कि "धाता दधातु"[4] में कहे हुए देवताओं के नाम आहुति एवं उपस्थान करे । " अग्न इन्द्रश्चेति"[5] सर्वकामी व्यक्ति इन्द्र लिए आहुति देवे ।

सर्वलोकाधिपत्यकामी व्यक्ति " य ईशे यं भक्षयन्तो "[6] ऋचा से इन्द्र तथा अग्नि के लिए आहुति देवे तथा उनका उपस्थान करे । अन्न को अभि-मंत्रित करके भिक्षुक को देवे । यह कृत्य पूर्ण करना चाहिए । इसके बाद पशु का उपाकरणकरे । सभी पुरस्ताद होमों को करे " दोषोगाय:"[7] मंत्र से ऋषि को

---

1. अथर्व 5.2.1, 7.1.1
2. अथर्व 6.33.1, द्रष्टव्य अथर्व परि0 34.19
3. अथर्व 6.1
4. अथर्व 7.17.1 19.1
5. अथर्व 7.110.1
6. अथर्व 2.34.1, 35.1
7. अथर्व 6.1.1

आहुति देकर उनका उपस्थान करे । अभयकामी व्यक्ति अभय वाला गोदानिक तंत्र को परियापनान्त तक करके "इदावत्सराय"[1] ऋचा से आहुति दे । तदनु अन्यातानान्त कर्म करे । फिर "ऋदा नाम"[2] से आहुति देवे । इस प्रकार अन्यातानान्त कर्म तक करके "दोषो गाय"[3] सूक्त से भात को अभिमंत्रित करके खावे । व्रत की समाप्ति पर व्रत कोत्याग दे । "अभयं द्यावा पृथिवी"[4] ऋचा से जिस नगर या ग्राम कोअभयदान देने की इच्छा हो उसके चारों दिशाओं में आहुतिदेवे । ज्योतिष्टम यज्ञ में दीक्षित पुरूष को ब्रह्म दण्ड देवे । यदि खो जाने की स्थिति आजावे तो "द्यौश्च में"[5] ऋचा से द्यावपृथिवी को आहुति एवं उनकाउपस्था करे । "यो अग्नौ"[6] इत्यादि ऋचा से रूद्रदेव को आहुतिप्रदान करके उन का उपस्थान करे । यह कार्य स्वस्त्ययन की इच्छा वाला व्यक्ति करे ।

---

1. कौ0गृ0सं0 42·17
2. तदेव 42·9
3. अथर्व 6·1·1
4. अथर्व· 6·40·1, 48·1
5. अथर्व, 6·5·3
6. अथर्व0 7·87·1

वृषोत्सर्ग कर्म -

इसका वर्णन कौ०गृ० क० 24·19 में किया गया है । यह भी एक पौष्टिक कर्म है । वृषभ को लेकर विवाह की भाँति अग्नि प्रणयन करके वत्सतरियो के साथ " इन्द्रस्य कुक्षि: सहस्र, "[1] इत्यादि ऋचा से वृषभ को छोड़े तथा " रेतोधायै[2] त्वा, " युवा[3] न: " मंत्रों को पढकर पुराने वृषभ का त्याग कर नये वृषभ को संप्रोक्षित करके छोडे तथा पुष्टि चाहने वाला व्यक्ति नवीन वृषभ द्वारा इन्द्र की पूजा करे ।

स्वस्त्ययन सम्बन्धी पौष्टिक कर्म

स्वस्त्ययन कर्मों का विवेचन वैदिकवाङ्मय में विस्तार से प्राप्त होता है ये कर्म मंगल की भावना से ओत- प्रोत है । इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

हिंसक जन्तुओं से रक्षार्थ कर्म[4] -

मार्ग में हिंसक जन्तुओं से भय उत्पन्न होने पर दायाँ पैर आगे

1· अथर्व 7·111·1

2· इनको कल्पजा कहा गया है, कौ०गृ० 24·20 की टिप्पणी

3· अथर्व 9·4·24

4· अथर्व 1·21·1, 7·55·1, 12·1·47

आगे बढाकर असंख्य प्रस्तरखण्डो को फेकते हुए चलना चाहिए । जहाँ भी प्रस्तर खण्ड पडता है वहाँ मनुष्यो एवं पशुओं का सर्वविध कल्याण होता है । गृह इत्यादि के कल्याणार्थ दर्भ तृणो में फेकना चाहिए । स्वस्तिकामी व्यक्ति को रात्रि में तर्जनी अंगुली से मुख ढंककर सोना चाहिए । उसे प्रात: काल अगूठे के बराबर (प्रादेश मात्र) भूमि को नापकर चलना चाहिए । इससे कल्याण होता है । मार्ग में सर्वविध कल्याणार्थ[1] सक्तु इत्यादि ब्राह्मणो को दान देना चाहिए तथा ओदन, सक्तु बटक आदि तीन द्रव्यों तीन- तीन अंजलि पृथिवी पर फेंकने से सर्वविध कल्याण होता है ।

अन्यत्र[2] घर के बाहर जाते समय स्वस्तिकामी व्यक्ति के लिए कर्म का विधान भी किया गया है जिस से चोरादि एवं हिंसक जन्तुओं से भय समाप्त हो जाता है ।

भूतप्रेतादि से रक्षार्थ कर्म -

भूत, प्रेत, राक्षस इत्यादि से भय उत्पन्न होने पर स्वस्त्ययन कर्म का विधान किया गया है । इसके लिए मार्जन[3] करके पलाशादि 22 वृक्षों के समिध का आधान[4] करके इन्द्र के लिए चरु का तीन बार हवन करना चाहिए।[5] इससे व्यक्ति का कल्याण होता है ।

---

1. अथर्व 1·21·, 7·55·1 12·1·47 विशेष अथर्व 1·27·4, 12·1·62
2. अथर्व 4·3·1, 3·26·1, 4·1·1 4·28·1, 5·6·1, 5·6·3 11·2·1 इत्यादि ।

सर्पादि से रक्षार्थ कर्म -

सर्पादि से रक्षार्थ सिकता (बालू) को अभिमन्त्रित करके घर के चारो ओर बिखेरना चाहिए।[1] स्वस्ति कामी व्यक्ति को तृणमाला को युगछिद्र से गिकराकर संपादित एवंअभिमन्त्रित करके घर के द्वार पर बांधना चाहिए।[2] इस प्रकार सर्प, बिच्छू, मशक इत्यादि से भयमुक्ति मिलती है।

अग्नि से रक्षार्थ कर्म -

अग्न्यादि से शान्त्यर्थ " आयन इति"[2] मन्त्र से शान्त्युदक को अभिमन्त्रित करके गर्त पर फेकना चाहिए तथा शाला के चारो ओर शैवाल बिछा देना चाहिए। इस प्रकार अग्निसे रक्षा हो जाती है।

जल से रक्षार्थ कर्म -

नदी में नाव इत्यादि के सकुशल तरणार्थ " महीभूष्विति"[3] मंन्त्र से नाव को अभिमन्त्रित करके उसमें बैठना चाहिए। तथा संपातित नौमणि को बांधना चाहिए। इस प्रकार जल में डूबने से रक्षा हो जाती है।

अर्थ सिद्धि हेतु कर्म -

वैदिक वाङ्मय में सर्वार्थ स्वस्त्ययन कर्म का विधानभी प्रचुरता से उपलब्धहोता है। इसके अनुसार " स्वास्ति मात्र इति"[4] से रात्रि में

---

1. अथर्व 3.26.1, 3.27.1, 6.56.1
2. अथर्व. 3.26.1
3. अथर्व 6.106.1
4. अथर्व0 7.6.2
5. अथर्व 1.31.4

उपस्थान करना चाहिए । अन्यत्र[1] बताया गया है कि "इन्द्रमहमिति" मन्त्रका जप करने से व्यापारमें सर्वविध लाभ होता है ।

गृह के कल्याणार्थ "आलभेषज"[2] को घर के चारो ओरगाड़कर, घर के मध्यम में तथा घर के ऊपर रखने का विधान किया गया है ।

नष्टद्रव्य के प्राप्त्यर्थ इच्छुक व्यक्ति को "प्रपथ इति"[3] मन्त्र से हाँथ पैर को प्रक्षालित करके नष्ट द्रव्य को उठाकर 21 प्रस्तर टुकडो को अभिमन्त्रित करके चुतष्पथपर बिखेरना चाहिए । स्वास्तिकामी व्यक्ति को द्यावापृथिवी को नमस्कार करना चाहिए । इसप्रकारनष्ट द्रव्य का लाभ होता है । गायो को कल्याणार्थगोष्ठ स्वस्त्ययन[4] कर्म करने से कल्याण होता है ।

फसल कोरक्षा हेतु कर्म -

अन्न को रोगों से रक्षार्थ तीन स्वस्थ वल्ली को अभिमन्त्रित करके खेतों के मध्य में गाडना चाहिए । कीट आदि सेरक्षार्थ "हतं तर्दमिति"[5]

1• अथर्व 3•15•1

2• अथर्व 5•10•1 6•16•4

3• अथर्व 7•9•1 विशेषद्र0 कौ0गृ0सू0 32•27 तथा 52•16 की टिप्पणियां

4• अथर्व 4•1•1 कौ0गृ0सू0 51•9

5• अथर्व 6•55•1

मन्त्र से लोहे को सीरसे जोडते हुएखेत को परिक्रमाकरते हुए प्रस्तर विखेरना चाहिए। मूषकादिके मुख को केश से बांधकर खेत के बीच में गाड देना चाहिए। जिस दिन ऐसा करे उसदिन सूर्यास्त तक मौन रहना चाहिए। इस विधान से फसलों की रक्षा होती है।

बन्धन से मुक्ति हेतु कर्म -

पुरुषबन्धन मुक्ति हेतु भी स्वस्त्ययन कर्म का विधान किया गया है। इसके अनुसार "यास्याः[1] इति" "यत्तदेवो[2] इति" तथा "विषाणापाशा[3] निति" मन्त्रों से (जिससे व्यक्ति का बन्धन हुआ है उसके सामने) निगडद्वय से संपातित करके एक मुक्त निगड को बांधे हुए लोटे से तन्मय करके अभ्यातानादि उत्सर्ग करना चाहिए। इस प्रकार व्यक्ति बन्धन मुक्त हो जाता है। वर्षा बन्धन के मोक्षार्थ भूमिलेखा को सम्पातित करके उत्तरतन्त्र करना चाहिए।

दीर्घायुष्मप्राप्त्यर्थ कर्म -

दीर्घायुष्म प्राप्त्यर्थ स्वस्तिकामी व्यक्ति के लिए "विश्वेदेवा[4] सूक्त"

---

1. अथर्व 6·84·1, द्र0कौ0गृ0सू0 52·3
2. अथर्व 6·33·1
3. अथर्व 6·12·1
4. अथर्व 1·30·1 विशेषद्र0 अथर्व0 1·9·1, 35·1, 5·28·1

विहित है । इच्छुक व्यक्ति को स्थालीपाक विध से इष्वृत्पिण्डो को बनाकर उसे संपातित तथा अभिमंत्रित करके घृत तथा स्थालोपाक को खाना चाहिए। इससे स्वस्ति होता है ।

शान्ति कारक पौष्टिक कर्म -

विशाल वैदिक वाङ्मय शान्ति कारक पौष्टिक कर्मों से भरा पडा है । इस कर्म में शान्ति की भावना हीप्रधान होती है । इसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

द्यूतजयार्थ विघ्न शान्ति कारक कर्म -

द्यूत द्वारा धनोपार्जन करने वाले व्यक्ति के लिएइस कर्म का विधान विहित है । इच्छुक व्यक्ति को पूर्वाषाढ नक्षत्र में द्यूतशाला में गर्त खोदकर उत्तराषाढ में स्थूणा को ठीक प्रकारसे गाडना चाहिए । द्यूशाला का आच्छादन[1] करके त्रयोदशी चतुर्दशी एवंअमावस्याइन तीन तिथियो में दही एवं मधुसे अक्षो को वासित करके खेलना चाहिए । इस प्रकार द्यूतक्रीडा द्वारा धनोपार्जन के लिए विघ्नशान्त्यर्थ अभिषेचन एवं अभिवर्षण[2] करना चाहिए । अर्थात् पाकयज्ञ विधान से मरूत कापूजन करना चाहिए । तदनन्तर ओषधियों कासंपातन तथा अभ्युक्षण करके आदित्य का उपस्थान[3] तथावस्त्रादि दान

---

1. कौ०गृ०सू० 41·10
2. अथर्व 4·38·1, 7·50·1, 109·1

द्रअथर्व 1·4·1, 5·1 , 6·1, 33·1, 6·19·1, 23·1·, 24·1,

करना चाहिए उस कृत्यसे विघ्नशान्ति होती है ।

गोवत्सदोष शमन कारक कर्म -[1]

इसके द्वारा गौ तथा उसके बछडे में सामनस्य स्थापित किया जाता है । इसके सर्वप्रथम गौ के समीप बछडे को लाकर गौ मूत्र से उसका अवसिंचन तथा तीन बार भ्रमण (परिक्रमा) कराकर उसे जलपानार्थ छोड देना चाहिए।[2] गौ के सिर तथा कर्ण का अनुमन्त्रण करना चाहिए । इससे गौ तथा बछडे के स्नेह एवं शान्ति स्थापित हो जाती है ।

अश्वशान्ति कारक कर्म-

इस विधान से अश्व के दोषों का शमन होता है । इसमें वातरंहा[3] इति मन्त्र से घोडे को स्नान कराकर उदपात्र में संपातो कोलाकर पलाश केचूर्ण से युक्त उत्तर संपातो को उदपात्र में लाना चाहिए । उससे अश्व का आप्लावन तथा आचमन कराकर इधर- उधर उस जल का अवकीर्णन[4] करना चाहिए ।

---

1. ~~अथर्व-1-1-2-~~ कौ0गृ0 सं 41·19
2. अथर्व0 6·70·1
3. अथर्व 6·92·1
4. अथर्व0 6·92·1

धनोपार्जन हेतु शान्ति कारक कर्म -

प्रवास में धनोपार्जन हेतु जाने पर मार्ग में चोर डाकुओं जल आदि से भय उत्पन्न होने पर "भद्रा दधीति"[2] से इध्माधान करके आहुतियां देना चाहिए तथा मन्त्र का जप करना चाहिए। यान का सम्प्रोक्षण करके उतरना चाहिए तदनन्तर अक्षों को खेलना चाहिए। व्यापारियों के बीच कलह निवारणार्थ[2] गीले पैर यान से गांव के पश्चिम जाकर लौटना चाहिए रात्रि में समिधाओं का संकल्प करके साधारण स्थान पर बनाये नये गृह- विशेष में एक बार आधान करना चाहिए[3]। इस प्रकार करने से सर्वविध कल्याण होता है।

शास्त्र पाठद्वारा धनाभिलाषी व्यक्ति को "ऋचं सामेति"[4] तथा अनुमतये स्वाहा[5]" से आहुतियां देनी चाहिए। सूर्यास्त के समय पर पहुँचकर समिधा-दान[6] तथा हवन[7] करना चाहिए। इसके बाद तीन दिन तक बिना लवण के भोजन करते हुए व्रत रखना चाहिए। इससे धनाभिलाषी व्यक्ति की मनोकामना पूर्ण होती है।

---

1. अथर्व 7.8.1 द्र० कौ०गृ०सू० 42.1
2. अथर्व 6.44.2
3. अथर्व 7.60.1
4. अथर्व 7.54.1
5. अथर्व 7.20.6 अथर्व 7.89.1 10.5.46. 7.89.4
6. कौ०गृ०सू० 42.15 मूल तथा टिप्पणी अथर्व 2.29.1, 13.1.59

पापलक्षणी स्त्री दोष शान्ति कारक कर्म -[1]

अशुभ लक्षणी स्त्री के दोष शान्त्यर्थ वधू के दायी ओर के केश गुच्छ से लेकर मुख तक प्रोक्षण करके पलाश पात्र से फल करण तथा हवन करना चाहिए। स्त्री को जङ्गिडमणि[2] बांधने का भी विधान किया गया है।

गो- गर्भ धारणार्थ (वशाशमन) शान्ति कारक कर्म -

वशाशमन कराना अनिवार्य बताया गया है क्यों कि ऐसी गाय जिसके घर में रहती है, वह देव हतक (अशुभलक्षणोपेत) होता है यह कर्म कौशिक गृह्यसूत्र के अनुसार इस प्रकार वर्णित है।

वशाशमन कर्म " या आत्मदा इति"[3] सूक्त से करना चाहिए। इसमें पाकयाज्ञिक तंत्र करना चाहिए। प्रेषकृत् आज्यभागान्त में अग्नि के पूर्व में पश्चिमाभिमुखी धेनु को खडी करे। तंत्राग्नि के पश्चिमदेश में बैठकर अन्वारब्ध वशा के लिए शान्त्युदक तैयार करे। इसमें " या आत्मदा[4] इति "

---

1. अथर्व 1·18·1 26·1, 4·33·1 द्र0 कौ0गृ0सू0 42·19
2. अथर्व 2·4·1
3. अथर्व 4·2·1
4. अथर्व 4·2·1

सूक्त काप्रयोग करे । इसी शान्त्युदक से इसगाय का आचमन एवं संप्रोक्षण करे । आसीन कर्ता बैठी हुई गाय के प्रतिमहाशान्ति को उच्चस्वर से कह । " य ईशेपशुपति: पशूनाम इति"[1] से पशुपति के लिए हविष का हवन करके वशा के सिर ककुद तथाजघन देश को भिगावे । इसी प्रकार तीक्ष्ण धार वाली छुरि का क्लेदन तथा विलय॒से वशा के वपा का उद्धरण करे । वशा के दायें पार्श्व में दो दर्भों से " प्रजापतये त्वा जुष्टम् अधिक्षिपामीति"[2] कहकर यथा देवत अधिछिप्त करे । " निस्सालामिति"सूक्त से 3 बार उल्मुक को अपने बायें से तथा वशा के मध्य 3 बार उल्मुकाहरणकरे । शामित्र स्थान (वध स्थान) पर ले आयी गयी धेनु की पीछे खडा होकर परिभोजनीय दर्भों से उसका स्पर्श करे अग्नि के पश्चिम कोण मेंवशा को पश्चिम की ओर तथा उत्तर की ओरपैर की स्थित में गिरावे । समस्यै तन्वा भवति"[3] मंत्र से अन्वारब्धभिन्न दर्भ को वशा के नीचे फेंक देवे । तदनु" प्रजानन्त"इति[4] से वशा के प्राणों को निरूद्ध करे । मारे जाने वाली गाय के दायें और खडे होकर रक्षोघ्नगण सूक्त का जप करे । " यद्वशा मायुमिति"[5] मत्र से

---

1. अथर्व 2.34.1
2. कौ0सू0 44.10 की टिप्पणी
3. अथर्व 2.14.1
4. कौ0सू0 44.14 की टिप्पणी
5. अथर्व0 2.34.5
6. कौ0सू0 44.17 की टिप्पणी ।

संज्ञपन होने के बादआज्यसे हवन करना चाहिए। पत्नी केपास जाकर गात्रादि का उदपात्र से प्रक्षालन करना चाहिए। मुखशुन्ध स्व देवयज्याया[1] इति" समुख, "प्राणानिति "से नासिका चक्षुरिति से नेत्र, श्रोत्रमिति से कान, "यत्ते क्रूरं यदास्थितमिति" से ग्रीवा के बन्धनस्थान "चरित्राणीति" से दोनो पैर", नाभिमिति" से नाभि, "पायुमिति" से गुदा तथा यत्ते क्रूरं यदास्थितमिति चछुन्धस्वं[2] इति" से गाय के अवशिष्ट पश्वादि अंगो का अवसेवनकरके कर्ता कोप्रयोजनानुसार बनाना चाहिए वपाश्रपणी घृत, स्रुव, स्वधिति, एवं दर्भ को अन्वारम्भणार्थ ग्रहण करके शामित्र के चारो ओरवशा को उत्तान करके नाभिलक्षित देश में वशा के अभिमुख बिछावे। स्वधिति मैनं[3] हिंसीरित" से मारने वाले को शस्त्र देवे। "इदमहं - - - - - हन्तास्मि[4] इति" से नाभिदेश को काटकर अधरप्रवृस्क से लोहित को दूर करके" इदमह्यामुष्या, - - - इत्यादि[5] " से दर्भ के अधरखण्ड से लोहित को छूकर दूसरे मंत्र से लोहितलिप्त दर्भखण्ड को" इदमहं- - निखनामीति[6] " से आप स्थान में छोडे।

1• कौ०गृ० 44•19

2• तदैव 44•28

3• तदैव 44•30

4• तदैव 44•31

5• तदैव 44•33

6• तदैव 44•33

"वपया द्यावापृथिवी इति"[1] से वापाश्रपणी को वपा से ढककर स्वधिति (छुरे) से वपादेश के चर्म को काट- काट करवपा निकाले गये स्थान का "आव्रस्कमधिधायसि अधिधारण करके "वायवे स्तोकानामिति"[2] से अग्नि पर नाभिनिहित दर्भाग्र को फेंके । "प्रत्युष्ट रक्षे इति"[3] से वपा को अंगार पर रखे । "देवस्त्वेति"[4] से वपा काश्रपणकरण घृत को छोडकर वपा को खुब पकावे । यदि वशा गर्भिणी होवे तो गर्भको सा हिरण्य एवं सयव अंजलि पररखकर "य आत्मदा इति"[5] सूक्त से एक बार गर्त में अग्नि को प्रज्वलित करके फेंक देवे । चर्मों को एक दूसरे से मिला कर के हृदयादि अंगों का भी हवन करे । वशा के हृदय जिह्वा, श्येन, दोषी पार्श्व, यकृत, वृक्क गुदा श्रोणि आदिदेवताओं से सम्बद्ध है, तथा दायीं भुजाललाट, बांयी श्रेणि तथा गुदा आदितीनस्विष्टकृत भाग है । अत: इन भागों को देवताओं के अनुसार ही पकाना चाहिए । हवन काल में हृदयादिका दो- दो बारखण्डन करके, स्विष्टकृत के लिए एक ही बारअवखण्डन करे । वपा कोचार खण्ड करके "समिद्ध"[6] तथा अथर्वास्येति"[7] मंत्रों से दो खण्डों का हवन करना चाहिए ।

---

1 कौ०गृ० 44·34 मुल तथा टिप्पणी

2· कौ०गृ० 44·37

3· तदैव 44·38

4· तदैव 45·1

5· अथर्व 4·2·1

6· अथर्व 5·12·1, 27·1

7· तदैव 7·20·6

इनदोनो मन्त्रों से तृतीयखण्ड का तथा " आनुमती‌ ‌(अनुमतिः सर्वमिति)[1] से चतुर्थ खण्ड का हवन करना चाहिए । " जातवेदो पपया गच्छ स्वाहा " से एक बारआज्याहुति देवे । " अध्र्व नभस मारुतं[2] " गच्छतमिति " से वपाश्रपण्या को अग्निपर फेंके । प्राची दिशा को एक तथा प्रतीची को दूसरा फेंकनाचाहिए । " पित्र्येषु वह वपां[3] इति " से वपा से तीन बार आहुति देवे । समयवे(खण्डों " को तीन बार हवन करे । " समृडिति[4] " से स्थालीपाक का हवन करे । " क[5] इदं कस्मा अदात्कामस्तत्रै[6] " यदन्नं[7] पुनर्मां विन्द्रियमिति[8] " सुक्त सभी विधि कर्मों से प्रयुक्त होने वाला है । इसप्रकार भी वशाशमन के प्रकरणसेपशु पाकयज्ञ को व्यख्यात समझना चाहिए ।

अन्य शान्ति कर्म -

इसकावर्णन कौ०गृ० के क० 46 से प्रारम्भ होता है । टीकाकार आचार्य केशवने इसे प्रायश्चित्त कर्मापि की संज्ञा दी है । एवं अध्याय के अन्त में इसको पुष्ट किया है । परन्तु इनमें भी कुछको शान्ति कर्म मानना अधिक समीचीन लगता है । इनका वर्णन कौ०गृ० के अनुसार निम्न है-

---

1· कौ०गृ० 45/11 मूल तथा टिप्पणी

2· तदैव 45·12

3· तदैव 45·14

4· तदैव 45·16

5·8 अथर्व 3·29·7-8, 19·52·1, 6·71·1, 7·67·1

निषिद्ध कर्मों को करने से अभिषप्त व्यक्ति को उतामृतासु :

अन्य शान्ति कारक पुष्टि कर्म -

इसका वर्णन कौ०गृ०सू० के सू० 46 से प्रारम्भ होता है । आचार्य केशव ने इसे प्रायश्चित्त कर्माणि" की संज्ञा दी है एवं अध्याय के अन्त में इसे पुष्ट किया है परन्तु इनमें भी कुछ कोशान्ति कर्म मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है । इसका वर्णन निम्न है-

निषिद्ध कर्मों को करने से अभिषप्त व्यक्ति को " उतामृतासु: शिवास्त इति"[1] मन्त्र से मन्थोदन देना चाहिए । तथा उसको घर मे प्रविष्ट कराकर स्वयं कर्ता घर में प्रविष्ट होता है । गृह निषिद्ध कर्मों को करने पर यह शान्ति विधान किया गया है कि द्रुवण मणि को संपातित करनके व्यक्ति को बांधना चाहिए । इस प्रकार निषिद्ध क्षेत्र के कर्ता की शक्ति हो जाती है ।

निर्विघ्न यज्ञ समाप्ति के लिए[2] यजमान तथा ऋत्विज को सारूपवत्सा गौ के दूध में पका हुआ पदार्थ (ओदनादि) खाना चाहिए तथा सोम देवतावाले चरू का यजन करना चाहिए ।

1• अथर्व 5•1•7, 7•43•1

2• अथर्व 6•7•1

याचित वस्तु को निर्विघ्न प्राप्त्यर्थ, "यं यवामि यदाशस इति"[1] मन्त्र से सारूपवत्सा गौ के दूध में पक्वान्न खाना चाहिए। उससे याचित विघात नहीं होता।

अपशकुन में कपोत इत्यादि के अभीष्ट स्थान में विष्ट हो जाने पर[2] शान्त्युदक का आवपन तथा प्रोक्षण[3] करना चाहिए। 3 बार शलाका से अग्नि तथा गाय को परिष्कृत करना चाहिए। जंगली पक्षियों के घर मे प्रविष्ट हो जाने पर भी यही विधि विहित है।

दु:स्वप्न[4] के शान्त्यर्थ पुरोडाश का हवन करके जिस पार्श्व से स्वप्न देखा गया हो उसे बदल देना चाहिए। "विद्मा ते स्वप्न इति"[5] मन्त्र से सभी प्रकार के स्वप्नो को देखकर शान्ति करनी चाहिए।

आचार्य (गुरु) के दिवंगत हो जाने पर स्वस्तिकामी ब्रह्मचारी

---

1. अथर्व 5·7·5-10, 7·57·1-2
2. अथर्व 6·27·1 28·1·29·1, 14·7·23
3. कौ०गृ०सू० 39·9 द्र० अथर्व 6·28·2
4. कौ०गृ०सू० 46·9, अथर्व 6·45·1, 46·1, 7·100·1, अथर्व परि 34·8
5. अथर्व० 7·101·1

के लिए शान्ति कर्म करना चाहिए।[1] उसे 5 सामधेनियाँ लेकर दहन स्थान का 3 बार परिक्रमा करके हवन करना चाहिए। 3 रात्रि तक बिना करवार बदले दहन स्थान पर सोना चाहिए किन्तु आचार्य कौशिक[2] इसके विरुद्ध मत प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि दहन स्थान पर न सोकर स्नान के बाद घर जाकर सोना चाहिए। तदनन्तर अन्य गुरु से दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इससे सर्वविध कल्याण होता है।

अशुभ नक्षत्र[3] (मूल आदि) में बच्चों के जन्म लेने पर उनके पाद या अंगुष्ठ में रज्जु बाँधकर उदपात्र को संपादित एवं अभिमन्त्रित करके उसमें दर्भपिंजुली डालकर स्नान के बाद ग्रीवा पाश को नदी में तथा कटिपाश को जल के मध्य में फेंक देना चाहिए। अशुभ नक्षत्र में उत्पन्न शिशु माता, पिता, एवं भाई के लिए दोषी होते हैं अतएव शान्तिकर्म करना अपरिहार्य है।

धनिक (ऋणदाता) के निधन पर भी शान्ति का विधान प्राप्त[4] होता है। इसमें द्रव्य को अभिमन्त्रित[5] करके ऋण लेने वाले को ऋणदाता

---

1. अथर्व 6.46.2, 6.49.1, 7.101.1, 12.1.19, 16.5.1
2. अथर्व 7.89.1 (विशेष) प्र अथर्व 6.114.1 कौ०गृ०सू० 46.30
3. अथर्व 6.110.1, 6.112. 1 113. 1-2
4. द्र० कौ०गृ० सू० 46.33
5. अथर्व० 6.117-119

के पुत्र को उसका धन लौटा देना चाहिए तथा ऋणमुक्ति को दीपित करना चाहिए। इससे व्यक्ति अनृण हो जाता है।

आकाशीय जल से भीगने पर दोष होता है अत: इसकी निवृत्ति के लिए भी शान्तिपुष्टिकर्म[1] विहित है। इसमें तैल, सर्वौषधि, सुगन्धित एवं हिरण्य को अभिमन्त्रित[2] करके शरीर का उद्वर्तन तथा वृक्ष से गिरे फलों का स्पर्श करना चाहिए। इस प्रकार दोषनिवृत्ति हो जाती है।

संसर्गदोष शमनार्थ अभिशप्त व्यक्ति अपामार्ग समिध का आधान[3] तथा आचमन[4] करे। उसे स्वनीय स्थानों को खोदकर[5] गर्तादि[6] को भरना चाहिए। इससे सर्वदोष शान्ति होती है।

शकुनि शान्त्यर्थ पक्षियों को अमंगल शब्द को सुनकर "प्रोहि प्रहर इति[7] मन्त्र का जप करना चाहिए। यो अभ्युबभूपायसि[8]" मंत्र को जपकर

---

1. कौ०गृ०सू० 46.41
2. अथर्व० 6.124.1
3. कौ०गृ०सू० 46.49 अथर्व 7.65.1
4. अथर्व 10.5.22
5. अथर्व 12.1.35
6. अथर्व 12.1.61
7. कौ०गृ०सू० 46.54 मूल तथा टिप्पणी
8. तदेव 46-55

ोना चाहिए। उससे शान्ति होती है पूर्व या उत्तर से उलूक या कपोत की ध्वनि सुनाई पड़ना अमंगल कारक बताया गया है, अतः इसकी शान्ति करानी चाहिए।

इसी प्रकार कौ०गृ०सू० की क० 43.1 में विविध विषयों से सम्बद्ध शान्ति विधियों का विधान प्राप्त होता है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम विघ्न समनार्थ "कर्शफस्येति"[1] से पिशंग वर्ण के सूत्र में बंधी हुई अरलु मणि को संपातित एवं अभिमन्त्रित करके व्यक्ति को बांधना चाहिए। इससे ईर्ष्या शान्ति होती है वेणुदण्ड, चित्रदण्ड एवं ध्वजादि को धारण करने से सर्पश्रृंगद्रष्ट्रादि विघ्न नहीं होता। आयुधों को भी इसी सूक्त से संपातित एवं अभिमन्त्रित करके धारण करने से युद्ध में विघ्न की समाप्ति हो जाती है।

विषनगृहीत पुरुष की शान्ति हेतु फलीकरणों का धूप देना चाहिए। घर बनवाते समय विघ्न शमनार्थ भूमि की शुद्धि करनी चाहिए। "अतिधन्वानीति"[2] मन्त्र से अनुच्चरण, विवेशन तथा नियमन करना चाहिए। गृह स्थान में उपर्युक्त मन्त्र से हवन करने से विघ्न की शान्ति हो जाती है।

गृह प्रवेश के समय[3] कुलिजकृष्टि भूमि पर अग्नि के दक्षिण भाग में गृह

---

1. अथर्व 3.9.1

2. अथर्व 7.41.1

3. कौ०गृ०सू० 8.23

सम्बन्धी सम्भारो को एकत्र करके शान्त्युदक में शान्ति ओषधियों को डालना चाहिए। मध्यम स्थूण दर्भ में व्रीहि एवं यवों का आवपन करे तथा अन्यों में शान्त्युदक, शस्य एव शर्करा का आवपन करना चाहिए। शाला का माप[1] करके मध्यम स्थूणा को उठाते हुए अनुमंत्रण करना चाहिए। तदनन्तर वंशारोपण[2] करके उदपात्र एवं अग्नि को लेकर सभी मनुष्यों को गृह में प्रवेश करना चाहिए[3]। हवनादि के बाद स्वस्त्ययन, मंगलगान तथा ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।

---

1. अथर्व 3.12.1
2. अथर्व 3.12.6
3. अथर्व. 3.12.8

   विशेष द्र0 अथर्व0 3.12.1-2, 3.21.1, 1.5.1, 6.1,

   कौ0गृ0 सू0 43.13, 16 मूल तथा टिप्पणी।

*****

॥ तृतीय अध्याय ॥

वैदिक पौष्टिक एवं आभिचारिक कर्मों का अन्तः सम्बन्ध

पृ० सं० 113----135

तृतीय अध्याय

वैदिक पौष्टिक एवं आभिचारिक कर्मों का अन्त: सम्बन्ध -

वैदिक वाङ्मय में मानव कल्याण की भावना से अनेक कर्मों का विधान किया गया है। ऐहिक फल की प्राप्ति के लिये ये कर्म नितान्त महत्वपूर्ण है । पौष्टिक व अभिचारिक कर्म इन कर्मों में अग्रगण्य है पौष्टिक कर्मों के अन्तर्गत घर बनाने के लिये, हल जोतने के लिये, बीच बोने के लिये, अनाज उत्पन्न करने के लिये, पुष्टि के लिए, विदेश में व्यापार, करने के लिये जाने वाले वणिक के लिये नाना प्रकार के आशीर्वाद आदि की प्रार्थना की गई है । पौष्टिक कर्मों के अन्तर्गत नाना प्रकार की विघ्न बाधाओं तथा विविध रोगों से मुक्ति एवं राष्ट्र तथा राज्य की सन्तुष्टि हेतु अनेक कर्मों के साथ-साथ अभीप्सित वृष्टि की कामना भी प्रकट की गई है । सुख प्रसव तथा पुत्र प्राप्ति एवं सद्योजात शिशु की रक्षा से सम्बद्ध स्त्री कर्म सम्बन्धी प्रार्थनायें भी पौष्टिक कर्म के अन्तर्गत आती है ।

वैदिक मंत्रों में समृद्धि प्राप्ति के मंत्रों के अतिरिक्त ऐसी भी प्रार्थनायें पायी जाती है जिनकी उद्देश्य अपना कल्याण होने के साथ-साथ प्रतिस्पर्धियों तथा शत्रुओं के विनाश की भावना भी सन्निहित होती है । इस प्रकार के मारण, मोहन तथा उच्चाटन आदि से सम्बद्ध मंत्रों तथा क्रियाओं को अभिचार कहा जाता है । उदाहरण स्वरूप एक अथर्ववेदीय मंत्र में एक स्त्री अपनी प्रतिस्पर्धिनी स्त्री को ध्वस्त तथा परास्त करने के लिये प्रार्थना करती है । इसी प्रकार कौशिक गृह्य सूत्र से पता चलता है कि किसी स्त्री के प्रेम सम्पादन के लिये किस प्रकार उसकी मिट्टी

की मूर्ति बनायी जाती है तथा बाण के द्वारा उसके हृदय को विद्ध किया जाता है तथा उस समय अथर्व वेदीय [1] मंत्रों का पाठ भी किया जाता है । इसी प्रकार पति के वशीकरण के निमित्त स्त्री उसकी मूर्ति बनाकर उसके मस्तक को गरम बाणों के सिरे से बेधती है तथा अथर्ववेदीय [2] सक्तो का पाठ भी करती है ।

प्रमुख वैदिक अभिचार कर्म -

वैदिक वाङ्मय में अभिचार कर्मों का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

§1§ रक्षार्थ कर्म -

अभिचारिक कर्म के कर्ता एवं साध्य को अपनी रक्षा के लिए अभ्यातानान्त हवन के बाद " दूष्या दूषिरसि"[3] मंत्र से तिलकमणि को सम्पादित एवं अभिमन्त्रित करके बाँधना चाहिए । कर्म करने के पूर्व व्यक्ति को इन कर्मों की दीक्षा लेनी चाहिए । शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी की तिथि में अपराहन समय में "अभ्यातानान्त " तक कर्म करके " भरद्वाज प्रवस्क" अर्थात् द्यावा पृथिवी", उर्वन्त रिक्षमिति[4] से मृत्युरहमिति" मन्त्र से व्याधिघातक समिधाओं का आधान करे । " य इमां देवो मेखलां इति", "अयंवज्र इति"[5] ऋचाओं से मेखला एवं

---

§1§ अथर्व0 3/25

§2§ अथर्व0 6/130, 6/138

§3§ अथर्व0 - 2.11.1.

§4§ " 1.12.1.

§5§ " 6.133.1, 134.1.

दण्ड को पहले सम्पातवत् करे पश्चात् अभिमन्त्रित करके बाँधे । दण्ड को "वज्रो असि - - - - -मु च इति[1] तीन ऋचाओं से ग्रहण करें । भक्ताहुत से प्रतिदिन मेखला इत्यादि की गाँठों को लीपे । " अयं वज्र इति[2] मंत्र से पूर्व सम्पातित दण्ड को तीन बार नीचे प्रेरित करे तथा जल स्पर्श करें " यदस्नामिति[3] सूत्र से एवं "फड्ढतोऽसाविति" कहकर भोजन पात्र को ताड़ित करें ।

§2§ शत्रुमारण कर्म -

कौशिक गृह्यसूत्र[4] में यह कर्म वर्णित है । सर्वप्रथम शत्रु की मूर्ति बनाकर रख ले । "इदम हमामुष्यायणस्यामुष्या: " " पुत्रस्य प्राणापाना वध्यायक्षामि इति[5] कहकर अभिचार करने वाला व्यक्ति दण्ड ग्रहण करें तथा द्वेष्य व्यक्ति के भोजन तथा अलंकार §शत्रु की मूर्ति§ पर शीश चूर्णों को " ये मावाश्या[6]मिति" से बिखेरे तथा मूर्ति को ताड़ित करे । द्यावापृथिवी [7]उर्विरिति" मंत्र से दक्षिण की ओर से दौड़ते हुए द्वेष्य के पैरों को कुठार से काटे । यह छेदन अनुपद रेखाओं तथा प्रथम तीन रेखाओं द्वारा करना चाहिए । प्रतिरेखा पर सूक्त पाठ करें । कटे पैर से धूलि लेकर कपड़े से बाँध कर भाड़ में फेंक देवे । शब्द होने पर द्वेष्य

---

§1§ अथर्व परिशिष्ट - 19.42.4-6

§2§ अथर्व0 6.134.1

§3§ " 6.135.1

§4§ कौ0 गृ0 सू0 48.22, मूल तथा टिप्पणी ।

§5§ कौ0 गृ0 सू0 46.22 मूल तथा टिप्पणी ।

§6§ अथर्व0 1.16.1.

§7§ " 2.12.1.

व्यक्ति को मरा हुआ समझना चाहिए । इसके बाद अग्नि के गर्त को कूदी (बेर के लकड़ी से बना करछुल) से उपस्तृत करें । बारह दिन तक बिना परिवर्तन के भूति-शयन करना चाहिए इसके पश्चात् उठकर तीन दिन तक जल को हाथ में लेकर फेंकना चाहिए । सक्तु को जल से मिश्रित करके पीना चाहिए । तीन रात्रि तक तीन-तीन मुट्ठी सक्तु पीवे तदनन्तर दो दो मुट्ठी तीन रात्रि तक एक-एक मुट्ठी छः रात्रि तक " आहुतास्य भिहुतेति[1] ऋचा से पीना चाहिए । बारहवें दिन प्रातः ब्राह्मणों एवं परिचारकों को क्षीरोदन खिलाकर उच्छिष्टानुच्छिष्ट को बहुमत्स्य तालाब में फेंक दे । ऐसा करने पर यदि मछलियाँ पंक्ति बद्ध होकर दौड़े तो शत्रु को मरा हुआ समझना चाहिए । "द्यावापृथिवी"[2] सूक्त से लोहित सिर वाले कृकलास (गिरगिट) को मृतवत करके भस्म करें । तत्पश्चात" अग्ने यत्ते तप इति"[3] पाँच सूक्तों से उपस्थान करें । इस बीच दूसरा कर्ता अभ्यातानान्त करके जीव को आठ भागों में बाँटकर एक एक ऋचा पढ़कर आहुति देना चाहिए । अग्नि के पश्चिम शरभृष्टि को रखकर उत्तर की ओर पसीना आने तक गमन करें । उसके बाद लौटकर बेदी में बैठकर स्वेरावत होकर एक एक ऋचा पढ़कर शरभृष्टि का हवन करे । इसी प्रकार शत्रु की पदधूलि

---

(1) अथर्व 0 6.133.2

(2) " 2.12.

(3) " 2.19-23

लेकर ऐसा ही विधान करना चाहिए । कृकलास जीव के शरीर पर शर्करा तथा सिर पर विष रखकर "पाशे स इति"[1] अर्द्धर्च से उसका पैर बाँधे । अमुं ददे[2]" से दण्डाधान करें । खदिर निर्मित स्रुव से गर्त खोदकर द्यावा पृथिवी[3] सूक्त से हवन करे । इसी सूक्त से शत्रु के हृदय का वेधन करें । यह आभिचारिक कृत्य शत्रु को मारने की इच्छा से करना चाहिए ।

§3§ शत्रुक्षयिणी कर्म -

अनेक गृह्य सूत्रों[4] में इस कर्म का वर्णन किया गया है " भ्रातृव्यक्षयण-मिति"[5] मंत्र से शत्रुक्षयिणी संज्ञक अश्वत्थ की समिधाओं का आधान करे । यह आधान अरण्य क्षेत्र में करना चाहिए । इसके पश्चात् ग्राम में आकरब्रीहि यव एवं तिल का आवपन करे । " पुमान पुंस[6] इति" मंत्र से खदिरोत्पन्न जड़ को स्रुव-दण्ड में बाँधकर हवन करे एवं घृत से अलङ.कृत करके अभिचार करने वाले को बाँधे कर्ता जितना अभिचार करना चाहे उतने इगिडालङ.कृत पाशों को सम्पातवत् करे तथा " पुमान पुंस" इस मंत्र से अनुक्तों का सम्बन्ध करके मर्म का निखनन करे ।

---

§1§ अथर्व0 2.12.2

§2§ " 2.12.4

§3§ " 2.12

§4§ कौ0 गृ0 सू0 कण्डिका 48

§5§ अथर्व0 2.18.1

§6§ " 3.6.1.

"नाव प्रेणान" "नुदस्य कामेति"[1] ऋचा से मंत्रोक्त शाखा से प्रणुदन करे तथा तो घरांच:[2]इति" से जब शत्रु सामने आवे तब " वृहन्नेषामिति"[3] का आन्वाहन करे " वैंकड.क्तेनेध्मेन इति"[4] से मंत्रोक्त का हवन करे । "ददिर्हीति[5] से "आग्नीति अर्थात् वृक्लास कर्म शरभृष्टि कर्म, शत्रुक्षयिणी कर्म इत्यादि 19 तन्त्र करे । सूक्तान्त में अहिछत्रक का चूर्ण बनावे ।

§4§ गोहरण सम्बन्धी अभिचार कर्म -

सूत्रग्रन्थो में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है । कौशिक गृह्य सूत्र कण्डिका 48 के अनुसर "ते वदन्निति"[6] मंत्र से गाय ले जाने वाले पद का वृश्चन करे और " नैतां ते देवा इति[7]" सूक्त में " एकाब्रह्मगवी श्रमेण तपसेत्य-नया[8]" ऋचा से ले जाने वाले का अन्वाहन करे । हनन मारण इत्यादि का अन्वाहन करें । द्वेष्य को अपने मन में रखकर शुद्ध स्थान में "अवध्यवत् अमुं हनस्व इति [9]" वाक्य में शत्रु का नाम लेकर इस वाक्य को तीन बार कहे । बारह

---

§1§ अथर्व 3.6.8, 9.2.4.

§2§ " 3.6.7.

§3§ " 4.16.1

§4§ " 5.8.1

§5§ " 5.13.1

§6§ 5.17.1 कौ० गृ० सू० 48.11

§7§ 5.18.1. 19.1

§8§ " 12.5.1.

§ 9§ कौ० गृ० सू० 48.18

रात्रि तक प्रतिदिन जप करे । इसके बाद दो सूर्योदय होने पर चौदहवें दिन शत्रु को मरा समझना चाहिए । दण्ड से अबध्य स्थान से अश्मचूर्ण को दूर करें । तदनु " उपप्रागात्[1]" मंत्र से भात का पिण्ड बनाकर कुत्ते को देवे तथा अस्थि-कमणि या पलाशमणि को बाँधे । इंगिड का हवन करे । "इंद तद्युजे चासौ मनसा[2] अति" से अहिताग्नि के प्रति निर्वाप ﴾ अभिचार ﴿ करे । मध्यम पलाश से "यत किं चासाविति[3]" पंच ऋचा वाले सूक्त से फलीकरणों का हवन करे । बर्हिलवनादि का प्रतिष्ठापन करके अग्नि का स्फोटन करे एवं अन्याग्नि का प्रणयन करें । "निरमुमिति" सूक्त से स्तरण करके अभ्यातानान्तपूर्वक इंगिड का हवन करे । वत्सशेप्या में मूत्रपुरीष करके तिमिर फल के द्वारा अथवा अपालेण्डिका के द्वारा ढँककर बाधक काष्ठ से उसे पीसकर द्वेष्य के मर्मों को खोदे ।" यथासूर्यमिति [4]" मंत्र से द्वेष्य का अन्वाहन करे और शत्रु को देखकर " यावन्तो मा सपत्नाम्"[5] मंत्र को जपे । अन्द्रोंतिभिः" "अग्ने जातान - - - इति[6]" ऋचा से विद्युत ताडित वृक्ष की समिधा रखे । "सान्तपना इति"[7] मन्त्र से इषिका के समान रेखायुक्त मण्डूक को नीचे तागे से उसकी बाहुओं को बाँधकर उष्णोदक में फेंक देवे ।

- -

﴾1﴿ अथर्व0 6.36.1.

﴾2﴿3﴿" 6.54.1., 6.80 .1

﴾4﴿ " 7.13.1

﴾5﴿ " 7.13.2

﴾6﴿ " 7.31.1., 34.1. , 108.1 59.1

﴾7﴿ " 7.77.1-3

"गव इति[1]" ऋचा से अभिचारोक्त शालिशकुनिक्षीरोदन को पकाकर एवं अभिमन्त्रित करके शत्रु को खाने के लिए देवे । आम्रपात्र के ऊपर हस्तप्रक्षालन करे । यह शान्तिकर्म अभिचार की शान्ति के लिए करना चाहिए ।

§5§ अभिचार सम्बन्धी शान्तिकर्म -

गृह्य सूत्रों में कौशिक गृह्य सूत्र के अनुसार "सपत्नहनमिति"[2]ऋचा से शत्रु को वृषोत्सर्गवत् करके स्वयं पतित अश्वत्थ काष्ठ की समिधा बनावे इसके बाद उदकुम्भ एवं वज्र का विधान करे । इन्द्रस्यौज इति[3]" ऋचा से दूर्वा डाले हुए घड़े के जल से प्रक्षालन करें । जिष्णवे योगाय इति"[4] से छः जलकुम्भों को जल के समीप रखे । " इदमहं योमा प्राच्या दिश इति[5]" आठ ऋचा वाले कल्पजा सूक्त से घड़े में जल डाले । जल से पूर्ण करके अपक्रमण करे । इस जल को मण्डप में अभिचार कृत्य के लिए रखे । कौशिक गृ० सू० में वज्र ग्रहण का भी विधान प्राप्त होता है । इसमें " इन्द्रस्यौज इति"[6] से सभी पूर्वोक्त कर्मों को करके "अग्नेर्भाग[7] इति" आठ ऋचाओं से जल को आधा करके पात्र को तपावे । घट को दूसरे व्यक्ति

---

§1§ अथर्व० 10.96.1.
§2§ " 9.2.1. कौ० गृ० सू० 49.1. मूल
§3§4§" 10.5.1. ख
§5§ " कौ० गृ० सू० 49.7. मूल एवं टिप्पणी,
§6§ " 10.5.7.
§7§ " 10.5.7.

को देवें । बाहर दक्षिणाभिमुख बैठकर पात्र को आगे करके "वातस्यरंहितस्य[1]" मन्त्र से जल ग्रहण करे तथा उसका अपोलन करे । "समग्न्यै इति[2]" सभी भूतों को अभयदान करके " योवआयो पामिति [3]" मन्त्र से वज्र का प्रहरण करें । यह कृत्य शत्रु के अभिमुख करें । शत्रु की मृत्तिका मूर्ति बनाकर वेदी के मध्य में स्थाणु में बांधे और उसके सिर पर घृत-सम्पातों को चुवावे । यस्मिन् षडुर्वी"[4] मन्त्र से उद्वज्रों से उक्त विधान करे । शत्रु के सिर पर प्रहार करे । "योउन्नपतिरिति[5]" ऋचा से आचमन करे । इससे शत्रु का मरण स्वयं हो जाता है " पश्चगामिति[6]" से आवाहन करके कर्ता उपोत स्थान करके " निर्दरमंज्य इति"[7] ऋचा से शान्त ओषधियों से स्वयं का स्पर्श करे । यह शान्तिकर्म करे । इसे अभिचार कर्म के बाद कर्ता को करना चाहिए ।

§6§ वशीकरण -

वशीकरण तो प्रायः अनेक गृह्य सूत्रों में प्राप्त होता है किन्तु कौशिक गृह्म सूत्र [8]" इसका विशद निर्वचन प्रस्तुत करता है । इसके अनुसार यह

- -

§1§ कौ० गृ० सू० 49.5

§2§ " " 49 पर केशवाचार्य जी का भाष्य

§3§ अथर्व० 10.5.15,50

§4§ " 13.1.28.,3.1., 16.6.1.

§5§ " 10.5.7.

§6§ "3 13.1.56

§7§ " 16.2.1

कर्म स्त्रियों में काम विषयक रुचि उत्पन्न करने के लिए किया जाता है । इसमें वृक्षत्वक,तगर, शरखण्ड, अंजन, कुष्ठ, ज्येष्ठो मधु एवं वातसंभ्रम तृणों को पीसकर ओज्यालोडन (घी में मिलाकर) लेप को स्त्री के अंगों में लेप करें । स्त्री में काम विषयक रुचि उत्पन्न करने के लिए कर्ता स्त्री के अंग का स्पर्श करे । भार्या के उदर एवं पृष्ठ भाग में " उत्तुदस्त्व इति[1]" ऋचा से अंगुलि से तोदन (गुदगुदाना) करें । 2। बदरी के कॉटों का आधान करे तथा 2। बदरी प्रान्तों को "लाक्षारक्त" सूत्र से प्रत्येक को बाँधकर आधान करें । उत्पल कुष्ट को नवनीत से अभ्यक्त करके पूर्वाह्न, माध्यन्दिन एवं अपराह्न में तपाकर आधान करे । चारपाई पर अधोमुख लेटकर पाटी को पकड़कर "ममैव कृणुतं वशे[2] मन्त्र को पढ़ता हुआ स्त्री के साथ संवेशन करे । त्रिपाद पर उष्णोदक रखकर शयनीय के पट्टिका को मजबूती से बाँधकर पादांगुष्ठों से उष्णोध को हिलाता हुआ सोवे । प्रतिकृति भावलेखनी (छाया चित्र) को दर्भाङ्कुर भाङ्गज्या एवं उलूक पत्र तथा असिता काण्ड से विद्ध करे इसी से स्त्री पुरुष को वशीभूत हो हो जाती है ।

(7) जारोच्चाटन -

गृह्य सूत्रों में स्त्रीकर्माणि के प्रसंग में जारोच्चाटन विधि भी वर्णित है ।

---

(1) अथर्व 3.25.1

(2) " 3.25.6.

अपिवृश्च इति[1]" स्त्री के जार का अन्वाहन करे । बाधक धनु को सष्ठ पद पर रखकर छेदन करे तथा जार के मैथुन स्थान पर पाषाण को अभिमन्त्रित करके फेंके । तृष्टिकं इति[2]" मन्त्र से 5 शरपुंख को जार के संगमन देश में फेंके । आते दद इति[3] मन्त्र से जार के अंगों का स्पर्श करें । इससे जार का उच्चारन हो जाता है।

पौष्टिक एवं अभिचारिक कर्मों में साम्य -

पौष्टिक एवं आभिचारिक कर्म एक दूसरे से अभिन्नरूप से जुडे है । दोनों का पृथक्करण एक दुष्कर कार्य है । वस्तुत: अभिचारों का क्षेत्र व्यापक है । उनका भी परम लक्ष्य पुष्टि करना है । शत्रुओं पर विजय पाने के लिये क्लेशदायी दीर्घ रोगों के निवारण के लिये सद्योजात शिशु तथा उसकी माता अर्थात जच्चा - बच्चा को सन्तप्त करने वाले भूत-प्रेतों के विनाश के लिये नाना प्रकार के अभिचारों का वर्णन वैदिक सूक्तों में प्राप्त होता है ।

जादू-टोना आदि का ही सुसंस्कृत नाम अभिचार है । जादू-टोना हमेशा बुरा नही हुआ करता है इनके द्वारा प्राचीन मानव अपने कुटुम्ब की रक्षा अपने शत्रुओं से तथा रोगों के आक्रमण से किया करता था । आत्म

- -

[1] अथर्व0 7.90.1

[2] " 7.113.1

[3] " 7.114.1

संरक्षा की भावना ही इन आभिचारिक कृत्यों की पृष्ठभूमि है ।प्राणी इस पृथ्वी तल पर अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहता है। उसकी यही कामना रहती है कि वह भी दीर्घकाल तक सुख भोगे तथा उसकी कुटुम्ब, उसका परिवार तथा उसकी सन्तान भी कल्याणमय जीवन बितावे इसे ही आत्म-संरक्षा की सहज प्रवृत्ति कहा जाता है । मानव प्रथमत: अपनी रक्षा अपने ही भौतिक उद्योगों के बल पर करता है किन्तु जब वह अपने भौतिक साधनों से अपने प्रयासों में विफल हो जाता है तब वह आधिदैविक क्रियाओं तथा प्रयासों की ओर अग्रसर होता है । ये प्रयास ही यातु, अभिचार, अथवा जादू टोना इत्यादि संज्ञाओं से जाने जाते है । यातु या अभिचार दो प्रकार का होता है । शोभन तथा अशोभन । शोभन प्रकार में किसी दूसरे के द्वारा किये गये अनिष्ट से अपने के बचाने को भावना प्रबल होती है । अशोभन प्रकार में शत्रु विशेष के ऊपर मारण, मोहन तथा उच्चाटन की भावनायें विशेष जागरूक रहती है ।

यद्यपि ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद आदि में भी अभिचार सम्बन्धी अनेक प्रसंग प्राप्त होते है। किन्तु अथर्ववेद ऐसे विश्वासों की जानकारी के लिये अमूल्य ग्रन्थ रत्न है । अथर्वसंहिता के मंत्रों का आभिचारिक प्रयोग कौशिक गृह्य सूत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है । मानव विज्ञान के इतिहास में कौशिक गृह्य सूत्र नितान्त उपादेय प्रमाणिक तथा रोचक ग्रन्थ है जिसमें उन अभिचारीय क्रिया कलापों का विचित्र वर्णन है जो मन्त्रों के साथ प्रयुक्त होते है ।

पौष्टिक कर्मों तथा आभिचारिक कृत्यों में प्राप्त साम्य का स्पष्टीकरण अथर्व वेद में उल्लिखित विविध व प्रमुख अभिचारों के अध्ययन से स्पष्ट किया जा सकता है । विवाह से सम्बद्ध अनेक सूक्त अथर्ववेद में उपलब्ध होते है, जिनके अनुशीलन से उस युग के समाज का चित्र हमारे नेत्रों के सामने बलात् प्रस्तुत हो जाता है । इन सूक्तों में कहीं तो पुत्र की उत्पत्ति के लिये प्रार्थना है, तो कहीं सद्योजात शिशु की रक्षा के लिये देवताओं की स्तुति है । अथर्व वेद[1] का 14 वां काण्ड विवाह काण्ड है जिसके दो अनुवाको में 139 मन्त्र है, जिनका उपयोग विवाह के अवसर पर किया जाता है। इनमें से अनेक मन्त्र ऋग्वेद के वैवाहिक सूक्तों में भी उपलब्ध है। इस मन्त्र में अग्नि तथा सूर्य से प्रार्थना की गई है । कि वे कुटुम्ब के नाना क्लेशो को दूर करें

"यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु
निष्ठितमघं कृभिरघं कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः
सविता च प्रमुञ्चताम्[2] "

इसी प्रकार जब वधू अपने नवीन घर -पतिगृह में आती है, तब उसे दीर्घ

- -

1- अथर्व 1412/14/3

2- अथर्व 14.2.62

जीवन पाने के लिये भव्य प्रार्थना इस मन्त्र में की गई है

प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना
 दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ आयुः गृहपत्नी यथासो
दीर्घंट आयुः सविता कृणोतु ।।[1]

अब दूसरे प्रकार के मन्त्रों तथा तत्सम्बद्ध अनुष्ठानो पर दृष्टिपात कीजिये । कोई स्त्री अपने पति का प्रेम पाना चाहती है। अथवा कहीं वह अपनी सपत्नी को अपने वश में करना चाहती है, तब वह एक विशिष्ट अनुष्ठान के साथ इस सूक्त के मन्त्रों को उपयोग करता है ।

उत्तुदस्त्वोत् तुदतु मा धृथ्याः शयने स्वे ।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामित्वात्हृदि
आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्प कुल्मलाम्
तां सुसन्नतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ।।
या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसन्नता
प्राचीन पत्रा व्योषा तया विध्यामित्वा हृदि ।।[2]

---

[1] अथर्व० 14.2.75

[2] अथर्व 3.25.1,2,3,

तुम्हें बेचैन बनावे । अपनी सेज पर तुम आनन्द के साथ मत रहो ।
काम का जो भयानक बाण है उससे मैं तुम्हारे हृदय को बेधती हूँ । कामदेव
का बाण मानसिक व्यथा के पन्तों से युक्त है। इच्छा के जिसमें काँटे गड़े है,
संकल्प (निश्चित इच्छा) ही जिसका डंडा है ऐसे बाण से तुम्हारे ऊपर
ठीक लक्ष्य रखकर काम तुम्हारे हृदय को बेधे । काम का बाण प्लीहा को
सोखने वाला है ठीक लक्ष्य पर जमा है उसके पंख आगे उड़ रहे है तथा यह
जलाने वाला है, ऐसे बाण से मैं तुम्हारे हृदय को बेधती हूँ ।

इसी प्रकार पति के वश में लाने वाली वधू इस वशीकरण क्रिया
का आश्रय लेती है। वह अपने प्रियतम की मूर्ति बनाती है, उसे अपने सामने
रखती है और उसके सिर पर गरम बाणों से आघात करती है, साथ ही
साथ अथर्व के दो सूक्तों[1] का पाठ भी करती जाती है । इन सबका ध्रुव
वाक्य है ।

" देवा: प्रहिणुत स्मरम् उवसौ मामनुशोचतु" अर्थात हे देवगण । काम
को इसके प्रति भेजिए, जिससे वह मेरे प्रेम से उद्विग्न हो जाय । इसी प्रकार-

उन्मादयत मरूत उदन्तरिक्षमादय ।
अग्न उन्मादयात्वमसौ मामनुशोचतु।।[2]

हे देवता लोगइसे पागल बना डालिए मेरे प्रेम से । ऐ वायु ।
इसे पागल बना डालो हे अग्निदेव । आप भी इसे पागल बना डालो । वह
मेरे प्रेम से शोक से व्याप्त हो जाय ।

स्त्री पति को लक्ष्य कर कह रही है, अगर तुम तीन योजनातक यहाँ
से दौड़ गये हो, पाँच योजनों तक अथवा घोड़े के दिन भर चलने के रास्तों

1- अथर्व- 6/130, 6/138

को पार कर गये हो, तो वहाँ से तुम मेरे पास अवश्य चले आवो और हमारे पुत्रों के तुम पिता बनो -

" यद् धावसि त्रियोजनं पञ्च योजना माश्विनम् ।
ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पित ।।[1]

अन्तिम मन्त्र का तात्पर्य यह है कि पति स्त्री के पास से भाग कर बहुत दूर चला गया है, परन्तु इस आभिचारिक अनुष्ठान के बल पर वह फिर लौटकर घर चला आता है, अपनी गृहस्थी जमाता है तथा अनेक पुत्रों का पिता बन जाता है । इन मन्त्रों की भावना सौम्यभाव से परिपूर्ण है,परन्तु जिन मन्त्रों में कोई स्त्री अपनी वैरिणी को परास्त करना चाहती है उनमें तो घृणा की तथा प्रत्यपकार की बड़ी ही तीव्र भावना दीख पड़ती है इस घृणाभाव के लिए ये मन्त्र अवधेय है ।

भगमस्या वर्च आदिठयाधि वृक्षादिव स्रजम् ।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक पितृठवास्ताम ।।[2]

अर्थात मैंने इस स्त्री ‖ अपनी वैरिणी ‖ के कल्याण सौभाग्य तथा तेज को अपने वास्ते ले लिया है जिस प्रकार पेड़ से माला को दृढ़ मूलवाले पर्वत के समान वह पिता माता के यहाँ ही सदा बैठी रहे। दोनों उपमाओं का तात्पर्य सुन्दर है माला तो सौभाग्य तथा तेज का प्रतीक है। पर्वत की उपमा देकर वह स्त्री भी हरायेन हटे । वह मायके में ही पहाड़ की तरह जमी रहे । हमारे प्रियतम का मुख देखने का सौभाग्य उसे नहीं मिले --

---

‖1‖ अथर्व0---6/131/3

‖2‖ अथर्व0--1/14

" एष: ते राजन कन्या वधूर्निधूयतां यम ।

सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितु: ।।

एषाते कुलपा राजन् । तामु ते परि दद्मसि ।

ज्योक् पितृष्वा साता आशीर्ष्ण: समोप्यात्।।[1]

यहाँ स्त्री यम को लक्ष्य कर कह रही है कि हे राजन यम । इस कन्या को आप अपनी बहू बनाकर अपने वश में रखिए । यह अपनी माता या भाई के या पिता के घर में बधी रहे। हे राजन। यह कन्या तुम्हारे कुल की रक्षा करने वाली है, इसे हम लोग तुम्हें देते है। यह अपने माता-पिता के यहाँ तब तक निवास करती रहे जब तक इसके बाल सर से न झड़ जाँय ।।। इस चण्ड का की प्रार्थना सचमुच बड़ी कठोर है। यमराज की पत्नी बना देने से ही उसे सन्तोष नहीं है। वह तो चाहती है कि वह बुड्ढी टुड्ढी बन कर मर भले ही जाय, परन्तु पति का मुँह न देख इससे बढ़कर घृणा की भावना क्या हो सकती है ?[2]

उग्र प्रतिहिंसा की आग जल रही है उन मन्त्रों में जिनमें कोई स्त्री अपनी बैरिणी को बाँझ बना देने की प्रार्थना करती है अथवा किसी पुरुष के पुरुत्व को नष्ट कर उसे नपुसक बना देने की निभ्रान्त प्रार्थना है। दूसरे प्रकार के सूक्त है[3] जिनमें से एक तो उतना उग्र या तीव्र नहीं है परन्तु दूसरे सूक्त में तो प्रतिहिंसा की कठोर भावना पढ़कर चित्त विचलित हो उठता है।

कोई व्यक्ति किसी विशिष्ठ औषधि से प्रार्थना कर रहा है कि तुम्हारे प्रयोग के द्वारा मै अपने शत्रु को क्लीव । शक्ति हीन । बना देना चाहता हूँ।

- -

।1। अथर्व ------1/14/2-3

।2। अथर्व---------7/35

इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वह उस व्यक्ति को सदा के लिए क्लीव बना डाले और दो पत्थरों से उसके दोनों अण्डकोशों को सदा के लिए कुचल डाले। इसे पढ़ कर तो प्रतिहिंसा की भावना अपने नग्न रूप में हमारे सामने सजीव होकर खड़ी हो जाती है। भला इन्द्र से ऐसी प्रार्थना !!! परन्तु वे तो शत्रुओं के " पुरभेन्ता" ठहरे और इसलिए उनसे "अण्डभेन्ता" बनने की प्रार्थना में वह व्यक्ति कोई अनौचित्य नहीं देखता !!! भला हो इस प्रतिहिंसा का जो ऐसे अनुचित कार्यों के लिए प्राणियों को अग्रसर करती। प्रस्तुत मन्त्र अवधेय है।

"क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि।
अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ ।।[1]"

स्त्रियों से सम्बद्ध इन कर्मों के अतिरिक्त अभिचारों का प्रयोग राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति, युद्ध विजय तथा शत्रु पराभव हेतु भी किया जाता था। इसके अतिरिक्त अभिचारों का प्रयोग दारिद्र्य विनाशभय दुर्भाग्य अपशकुनादि के निवारण तथा कृषि में प्रभूत उन्नति व अधिक अन्न उत्पादन हेतु भी किया जाता था। शत्रुओं के पराभव तथा नाश एवं राक्षसों के विनाश हेतु सभी संहिताओं[2] एवं ब्राह्मणों में आभिचारिक कृत्यों का वर्णन प्राप्त होता है।

---

[1] अथर्व०------6/138/2

[2] ऋग्वेद 3/53, 7/104, माध्य 1/7/7/25, 5/21/23, 10/14 आदि

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पौष्टिक कृत्य और आभिचारिक कृत्य दोनों का उद्देश्य एक है। दोनों ही अपने यजमान के कल्याण की कामना से सम्पन्न किये जाते है । इन दोनों ही कर्मों के सम्पादन से स्तोता को अभीप्सित कामनाएं पूरी होती है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि पौष्टिक कर्म और आभिचारिक कर्मों में पर्याप्त साम्य है और दोनों ही कर्म भौतिक समृद्धि हेतु सम्पन्न किये जाते है। पौष्टिक व आभिचारिक कर्मों में अङ्गाङ्गि भाव भी स्थापित किया जा सकता है। सूक्ष्म अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आभिचारिक कृत्यों का क्षेत्र व्यापक होता है जब कि पुष्टि कर्म अभिचारों की अपेक्षा सीमित होते है किन्तु यदि अभिचारों का परम लक्ष्य पुष्टि माना जाय तो यह मन्तव्य स्वयं खण्डित हो जाता है। निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि पौष्टिक कर्मों एवं अभिचारों में पर्याप्त साम्य है । उन्हें पृथक कर मानना एक दुष्कर कार्य है [2]

---

(2) ऐ० ब्रा० 2/17 5/27 शांखायन ब्रा 3/2, 4/1-7 8,11/5

श० ब्रा० 1/112/2

पौष्टिक एवं अभिचारिक कर्मों में अन्तर

वैदिक पौष्टिक एवं अभिचारिक कर्मों में पर्याप्त रूप में साम्य दृष्टि गोचर होता है फिर भी ये दोनो ही कर्म अलग-अलग है। वस्तुतः पौष्टिक कर्मों का उद्देश्य मानव के भौतिक एवं आध्यात्मिक समृद्धि की कामना करना है साथ ही इनमें किसी के भी अपकार अथवा हानि का भाव नहीं होता अर्थात पौष्टिक कर्म साध्य और साधन की पवित्रता पर आधारित होते है जब कि अभिचारिक कृत्यों का मुख्य उद्देश्य साध्य की प्राप्ति होता है। इन कृत्यों में साधन की पवित्रता पर कोई ध्यान नही दिया जाता साधन कैसा भी हो चाहे पवित्र हो अथवा राईणीय हो साध्य की प्राप्ति में समर्थ होना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पौष्टिक कर्म पवित्र साधनों के बल पर मानव की समृद्धि का विधान करते है जब कि आभिचारिक कृत्य औचित्य और अनौचित्य का ध्यान न देते हुए व्यक्ति विशेष की कार्य सिद्धि सम्पादित करते है।

पौष्टिक और आभिचारिक दोनों ही कर्मों के उद्देश्यों में लगभग समानता होती है। उदाहरण स्वरूप ऋग्वेद में विहित वशिष्ठ विश्वामित्र की आपसी प्रतिस्पर्धा को निदर्शन स्वरूप ग्रहण किया जा सकता है। इस विषय में आचार्य सायण ने एक आख्यान प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार सुदास के यज्ञ में विश्वामित्र अपने प्रतिस्पर्धा वशिष्ठ के पुत्र शक्ति के द्वारा अपने बल और वाणी से विरहित कर दिये गये पुनः जमदग्नि ऋषि के द्वारा प्रदत्त सूर्यलोक के समान वाणी और अपना बल प्राप्त किया।

शक्ति के उनके ऊपर अभिचार का प्रयोग करके उन्हें वाणी से विरहित कर दिया था ।[1]

ऋग्वेद के इसी प्रकार के अनेक सूक्त[2] शत्रुओं के विनाश के लिए प्रयुक्त है । इसी प्रकार ऐतरिय ब्राहमण के अनेक स्थलों पर शत्रुओं के पलायन वध व पराजय का वर्णन प्राप्त होता है । इसके एक प्रसङ्ग में शत्रु सेना को पराजित करने की रोचक विधि वर्णित है। सेना अर्थात् इन्द्र की प्रिय पत्नी प्रासहा है जिसके श्वसुर का नाम क: है अतएवं किसी भी सेना पर विजय प्राप्त करने के लिए विजयेच्छुक व्यक्ति उसके नीचे स्थित होकर दोनो ओर से घासों को काटे तथा विपक्षी सेना पर प्रासहे कस्त्वा पश्यति का उच्चारण करता हुआ फेंके । ऐसे करने से जिस प्रकार लज्जित पुत्रवधू श्वसुर से दूर भाग जाती है । उसी प्रकार शत्रु सेना श्रान्त होकर इधर-उधर भाग जाती है ।

" सेना व इन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रसहा नाम को नाम प्रजापति: श्वशुरस्तद्याडस्य कामे सेना जयेन्तस्या अर्धान्तिष्ठंस्तृण मुभयत: परिच्छिद्येतरां सेनामस्य स्येत्प्रास हे कस्त्वा पश्यतीति तद्यथै वाद: स्नुषा श्वशुराल्लज्ज माना निलीयमानैत्येवमेव सा सेना भज्यमाना निलीयमानैति यत्रैवं विद्वास्तृण मुभयत: परिच्छिद्येतरां सेनामभ्यस्यति प्रासहे कस्त्वा पश्यतीति[3]

1- ऋग्वेद 3/53

2- ऋग्वेद 10/171, 10/159

3- ऐ०ब्रा० 3/22

इसी प्रकार षडविंश ब्राह्मण में शत्रु उन्मूलन हेतु विविध अभिचारों का वर्णन मिलता है। एक प्रसङ्ग के अनुसार उदगाता अभिचार के लिए विष्टुतियों से त्रिवृत स्तोम की स्तुति करता है। विष्टुतियाँ इषु अर्थात बाण के नाम से प्रसिद्ध है। इन विष्टुतियों के पाठ से उदगाता इषु धनु ज्या आदि का प्रक्षेपण करता है। इस प्रकार इस अभिचार कर्म में उदगाता विष्टुतियों के प्रयोग से धनुष पर बाण की भाँति लक्ष्य वेध करता है जिससे शत्रुओं का विनाश होता है और स्तोता प्रभूत धन सम्पन्न हो जाता है —

" अनीकं प्रथमेषुर्धनुर्ज्या योन्तसः सेकयाति ज्येव पञ्चभिः सृजते स्पृणुते भ्रातृव्यं वसीयानात्मना भवति य एतया स्तुत ।[1]

इसी प्रकार पुष्टि की व्याख्या करते हुए मन्त्र ब्राह्मण में विवाह के अवसर पर सप्तपदी के समय पढ़े जाने वाले मन्त्रों में कन्या के अवसर पर सप्तपदी के समय पढ़े जाने वाले मन्त्रों में कन्या के लिए बल अन्य, ऐश्वर्य सौख्य, पशु आदि की प्राप्ति हेतु प्रार्थनाएं की गई है ।[2]

पुष्टि और अभिचार का प्रयोग वशीकरण के उपायों में भी किया जाता है। इसी प्रकार विष शमन के लिए भी विविध अभिचारों का प्रयोग किया जाता है ।

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि पुष्टि कर्म केवल मानव की भौतिक उन्नति की दृष्टि में रखकर विहित किये गये है जब कि अभिचारों का प्रयोग न केवल अभीष्ट की प्राप्ति के लिए किया जाता है प्रत्युत अपने प्रतिद्वन्दी विद्वेषी शत्रु तथा अनभीप्सित व्यक्ति को हानि पहुचाने के लिए भी किया जाता है ।

1- षडविंश ब्रा0 3/2/1-2

मारण् वशीकरण तथा उच्चाटन के प्रयोग विशुद्धत: आभिचारिक प्रयोग है । इनका प्रयोग शत्रु, शत्रुसेना, किसी स्त्री अथवा किसी पुरुष से मनचाहा कार्य कराने अथवा उसका नाश करने के लिए किया जाता है ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पुष्टि कर्म के बल मानव की भलाई के लिए है जब कि अभिचार एक व्यक्ति की भलाई करते है तो उसके प्रतिपक्षी का नुकसान भी करते है अथवा अभिचारों का प्रयोग केवल विद्वेषियों शत्रुओं आदि को केवल कष्ट पहुँचाने के लिए ही किया जाता है । अत: स्पष्ट होता है कि आभिचारिक प्रयोगों की अपेक्षा पौष्टिक कर्म सामान्य मानव के लिए परमोपयोगी है। यही कारण है कि इन पौष्टिक कर्मों की प्रासङ्गिकता हजारों वर्षों के बाद आज भी पूर्ववत अक्षुण्ण है ।

[चतुर्थ अध्याय]

पौष्टिक कर्मों के वैविध्य में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

पृ0 सं0 136—194

पौष्टिक कर्मों के वैविध्य में सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि :-

सम्पूर्ण वैदिक वाङ्•मय में पौष्टिक कर्मों का विवेचन विविध स्थलों पर हुआ है । अत: पौष्टिक कर्मों के वैविध्य में सम्पूर्ण वैदिक युगीन सांस्कृतिक अवस्था का परिचय मिल जाता है किन्तु अधिकांश पौष्टिक कर्मों का सम्बन्ध मानव के लोक जीवन से होने के कारण इसका सांस्कृतिक वैशिष्ट्य और ही महत्वपूर्ण हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पौष्टिक कर्मों में प्रतिबिम्बित सांस्कृतिक जीवन का अपना अलग ही वैशिष्ट्य है । इन कर्मों के वैविध्य में भारतीय संस्कृति का अध्ययन अधोलिखित ह उपशीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है ।

सामाजिक स्थिति -

वैदिक पौष्टिक कर्मों में समाज की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त में विश्वास प्रकट किया गया है। समाज के चारों वर्ण ब्राहमण, क्षत्रिय ब वैश्य एवं शूद्र विराट पुरूष के क्रमश: मुख, बाहुओं, मध्य भाग एवं पैर से पैदा हुए है -

ब्रहमणोस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यो भवत् ।
मध्यमं तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां शूद्रो अजायत् ।।[1]

ब्राहमण की उत्पत्ति अन्यत्र ब्रहमन् स्वरूप ब्रहमचारी से बताई गई है ।[2] एक अन्य मन्त्र में क्षत्रियो को देवाधिदेव ब्रात्य से उत्पन्न कहा गया है ।[3] मनुष्यों की भांति विराट् पुरूष से घोडे, गायें बकरियाँ तथा अन्य ग्रामीण एवं जंगली पशु

---

(1) अथर्व0 19•6•6

(2) " 15•5•5•

(3) " 15•8•1•

उत्पन्न हुए कहे गये है ।[1]

अथर्ववेद के कतिपय स्थलों पर पंचमानवों का उल्लेख है -

"तत्सूर्य: प्रबुन्नेति पंचेभ्यो मानवेभ्य:

या इमा पंच प्रदिशो मानवी पंचकृष्टय:[2]।"

पंचमानव से किन जातियों का तात्पर्य है, यह कहना कठिन है। ऐतेरय-ब्राहमण[3] के अनुसार इन पाँचों में देव मनुष्य, गन्धर्व और अप्सरा सर्प एवं पितृगण आते है । औपमन्य इनमें चार वर्णों तथा निषाद को सम्मिलित करते है । [4] राथ और गिल्डनर चार दिशाओं में रहने वाले लोगों तथा उनके मध्य में रहने वाले आर्यों को मानते है ।[5] त्सिमर महोदय पंच जना: में अनुदुहयु, यदु तुर्वस और पुरु को सम्मिलित करते है ।[6] इससे ज्ञात होता है कि वैदिक भारत में कई वर्ग के लोग रहते है थे ।

वर्ण-व्यवस्था -

वर्ण शब्द अथर्ववेद के 3 स्थानों पर उल्लिखित है जिसमें दो स्थलों पर यह रंग के अर्थ द्योतित करने वाले मंत्र में कहा गया है कि इन्द्र ने दस्युओं को मारकर

---

(1) अथर्व0 19·6·12

(2) " 19·17·6

(3) ऐ0 ब्रा0 3·31·

(4) यास्क, निरुक्त, 3·2·

(5) वैदिक इण्डिया, भाग-1, पृ0 528 (हिन्दी संस्करण)

(6) " " पृ0 528 (हिन्दी संस्करण)

आर्यवर्ण की रक्षा की ।[1] इससे आर्य एवं दास दो वर्णों की स्थिति और भी स्पष्ट होती है । एक अन्य मंत्र में अथर्वा ऋषि कहता है कि उसके नियम दास या आर्य नष्ट नही कर क सकते । दूसरे मंत्र से ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारो वर्णो पर प्रकाश पहुँता है ।

प्रियमादर्भ कृणु ब्रहम राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।।[2]

कृणु देवेषु प्रियं राजसुमा कुरू ।

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ।।[3]

इससे प्रकट होता है कि वैदिक काल में चारों वर्णो की सत्ता थी । धीरे-धीरे समाज का विकास जटिलता को ओर अग्रसर हो रहा था । समाज में ब्राहमण वर्ग का सर्वश्रेष्ठ स्थान था । क्योंकि वह विराट् पुरूष के मुख से उत्पन्न हुआ था ।[4] ब्राहमणों का जीवन तपस्या से संयुक्त था उन्हें व्रतचारी कहा गया है ।[5] तप से पृथिवी एवं स्वर्गलोक की रक्षा समझी जाती थी । तपस्या से ही ब्राहमणों में तेज का आगमन होता था । इसी कारण वे समाज में सम्मानित थे । यहाँ तक कि उन्हें देव भी कहा जाता था -

" सा मैं द्रविणं यच्छतु सा मैं ब्राहमणवर्चसम्"[6]

ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक युग में ब्राहमण लोग एक जाति के रूप

---

§1§ अथर्व0 20·11·9

§2§ " 19·32·8

§3§ " 19·32·1

§4§ " 19·6·6·

§5§ " 4·15·13

§6§ " 10·5·37·

में प्रतिष्ठित हो चुके थे। स्थान-स्थान पर ब्राहमण पुत्र को ब्राहमण ही कहा गया है।[1] ब्राहमणों का प्रधान कार्य पौरोहित्य था। उनका यज्ञ एवं अग्नि से घनिष्ठ सम्बन्ध था। पुरूषसूक्त में स्पष्टत: अग्नि एवं ब्राहमण की उत्पत्ति विराट् पुरूष के मुख से ही बताई गई है -

"ब्राहमणोस्य मुखमासीद् - - - - -मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च - - - -
अजायत "[2]

ब्राहमण इन्द्र जाल आदि बहुल प्रयोगों द्वारा जनता के अच्छे स्वास्थ्य की ~~का~~ कामना करता था। ये आचार्य के रूप में यम-नियम का पालन करते हुए अपने छात्रों से ~~की~~भी वैसी है अपेक्षा रखते थे[3]। उनकी ज्ञान पटुता इस बात से भी प्रमाणित होती है कि वे चार भाषाओं के ज्ञाता थे -

"चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राहिमण
ये मनीषिण :।[4]

ब्राहमणों को दक्षिणा के रूप में हिरण्य, पक्वान्न तथा दूध देने वाली गायें दी जाती थी।[5] वे सामान्यत: राज्य शक्ति की सीमा से मुक्त समझे जाते थे। यह सामान्य धारणा थी कि राज्य की उत्पत्ति ऋषियों एवं ब्राहमणों की तपस्या[6]

- -

§1§ अथर्व0 4·19·2·, 5·17·9, 19·34·6·

§2§ " 19·6·6·

§3§ " 11·5·17

§4§ " 9·10·27

§5§ " 9·4·13·,11·1·28, 18·4·50 अर्थशास्त्र 1·3 मनुस्मृति 1·8, याज्ञवल्क्य-5 /188 बौधायन धर्मसूत्र· 112/18/2·

§6§ " 19·41·1·

से हुई है । कदाचित् यही कारण है कि ब्राहमण राजदण्ड से मुक्त था । जिस राज्य में ब्राहमण को त्रस्त किया जाता था [1], वहाँ अवर्षण होता था सभा एवं समिति राजा के प्रतिकूल हो जाती थी[2] ब्राहमण की हत्या होने पर राज्य का शीघ्र ही नाश हो जाता था[3] ब्राहमण वध पारलौकिक दृष्टि से भी निषिद्ध समझा जाता था । क्योंकि उनके विचार में ब्राहमणहन्ता के पितर स्वर्ग नही जा सकते थें । अध्ययन और अध्यापन उसका स्वधर्म था । ब्राहमण की सम्पत्ति भी अग्राहय समझी जाती थी एक जगह कहा भी गया है कि ब्राहमण की गाय नष्ट करने से सृंजय वैतहव्यों की पराजय हुई जबकि इनकी एक हजार की संख्या थी ।[4] इसी प्रकार वशा नामक गाय भी क्षत्रियों और वैश्यों[4] के लिए अग्राहय थी । ब्राहमण को स्त्री भी दूसरों के लिए अग्राहय थी । राजा लोग सदैव ब्राहमणों की संख्या सुरक्षा का प्रबन्ध किया करते थें ।

संहिताओं में क्षत्रिय के लिये अनेकों शब्दों का प्रचलन था । अथर्ववेद मे तो क्षत्रिय के लिए क्षत्र[5] क्षत्रिय[6] राजन्य[7] और नृपति[8] शब्द प्राप्त होते है क्षत्र शब्द शासन शक्ति आदि के अर्थ हेतु प्रचलित था । इसी प्रकार राजन्य शब्द भी शासक वर्ग का ही ब

---

§1§ अथर्व० - 5·19·12 शतपथ ब्रा० -11·5·7·1·, गौतम धर्म सूत्र-8/5, 11·5-9

§2§ " 5·19·8 मनुस्मृति ·11/54·

§3§ " 5/18/10· अर्थशास्त्र - 3·5

§4§ " 12/4/3

§5§ " 2/15/4

§6§ " 12·5·11

§7§ " 12·4·32

§8§ " 5·18·15

नाम है परन्तु क्षत्रिय शब्द निश्चित रूप से ब्राहमणों से निम्न श्रेणी में आता था। इनकी सामाजिक स्थिति ब्राहमणों के पश्चात् तथा वैश्यों के पूर्व निर्धारित थी। पुरूष सूक्त में इनकी उत्पत्ति विराट् पुरूष के बाहु से मानी गई है - बाहू राजन्य: कृत:। इससे प्रतीत होता है कि क्षत्रिय ब्राहमण से निम्न श्रेणी का समझा जाता था। क्षत्रियों का प्रधान कार्य शासन करना था[1] यह बात इनके विशेषणों क्षत्र, नृपति आदि से भी सिद्ध होती है। वह एक महान योद्धा के रूप में वर्णित है। वह सिंह के समान प्रजा का भोक्ता तथा व्याघ्र के रूप में शत्रुओं का विनाशक था। शत्रुओं का विनाश करने के कारण ही वह इन्द्र का मित्र कहा गया है।-

"एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाम् क्षत्रूयतामा भरा भोजनाति।[2]

वेद के अन्य अनेकों उद्धरणों से यह प्रभावित है कि क्षत्रिय प्रत्येक लोगों की रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझता था। उसका प्रमुख हथियार धनुष, बाण था। जब कोई क्षत्रिय मरता था तो अन्त्येष्टि में भी उसके साथ धनुष-बाण रख दिया जाता था। इससे प्रतीत होता है कि उनका परम मित्र अस्त्र-शस्त्र ही था। ये अपने कुशल क्षेत्र के लिए यज्ञ यागादि पर निर्भर थे। जो क्षत्रिय अपने दीर्घायु हेतु अग्नि का नाम लेता है उसे न तो शत्रु और न ही मृत्यु भयभीत कर सकता है -

" नैनं हनन्ति पर्यायिणो न सन्ना अव गच्छति।

अग्नेर्य: क्षत्रियो. विद्वान्नाम गृहणात्यायुषे।।[3]

वैश्य लोग सामान्य रूप से प्रजाजन ही कहे जाते थे। एक मन्त्र में जहाँ

---

[1] मनुस्मृति - 1/89

[2] अथर्व० - 4·22·6

[3] " 6·76·4·

ब्राहमणों और क्षत्रियों का उल्लेख है, वहाँ वैश्यों के लिए "विश्य" शब्द प्रयुक्त है -

"नमों देववर्धेभ्य: नमों राजवर्धेभ्य: ।

अथो यो विश्यानां वधस्तेभ्यों मृत्यो नमोस्तु ते ।।[1]

वैश्यों को "विश" और आर्य[2] से भी सम्बोधित किया जाता था । वैश्यों की सामाजिक स्थिति क्षत्रिय पश्चात् तथा शूद्र पूर्व निर्धारित थी [3]। इनका प्रधान कार्य कृषि एवं पशुसेवा था । अथर्ववेद के सूत्रकार आचार्य कौशिक ने पितृमेध के प्रसंग में जहाँ क्षत्रियों के लिए धनुष बाण का विधान किया है वहीं वैश्यों के लिए पैना ﴾अष्ट्रा﴿ का निर्देश किया है पैना से हल हाँकने में सहायता मिलती थी । हाकिन्स[4] का भी मत था कि वैश्यों का प्रमुख कार्य व्यवसाय कृषि और[5] पशुपालन था । अनेकों सूक्तों में गाय, गोपति, गोष्ठ समृद्धि की कामना की गई है -

" मया गावो गोपतिना सचध्वमय वो गोष्ठ इह पोष इष्णु :[6]

शूद्रों की भी सामाजिक स्थिति निश्चित की । सामान्यतया में चौथे वर्ग के रूप में उल्लिखित है । इनकी सामाजिक हेयता कई बातों से सिद्ध होती है । एक स्थान पर अभिचार द्वारा भयंकर रोग "तक्मन" को नीच दासी पर जाने को कहा गया है ।[7] इसके पश्चात् तक्मन को शूद्रपत्नी पर आक्रमण करने को कहा गया है ।[8] इस

﴾1﴿ अथर्व0 6·13·1

﴾2﴿ " 5·11·3

﴾3﴿ " 6·13·1·, 19·6·6·

﴾4﴿ वैदिक इण्डिया भाग-2, पृ0 363, हिन्दी संस्करण 1962

﴾5﴿ महाभारत भीष्म पर्व- 42·44

﴾6﴿ अथर्व 3·14·6·

﴾7﴿ " 5·22·6·

﴾8﴿ " 5·22·7·

प्रकार के घातक उपचारों से शूद्रों के प्रति लोगों की घृणा व्यक्त होती है । वर्णों की उत्पत्ति के प्रसंग में भी इन्हें विराट् पुरुष के पैर से उत्पन्न कहा गया है । परन्तु उनकी हेयता के बावजूद भी मानव प्रेमी लोग सभी वर्णों का प्रिय बनने की इच्छा व्यक्त करते थे ।

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।[1]

एक स्थान पर दासी गोबर फेंकती हुई प्रदर्शित की गई है ।[2] ह्विटनी" महोदय ने दासी का अर्थ नौकरानी किया है [3]। दूसरे स्थान पर उलूखल एवं मूसल के साथ वे भीगे हाथों वाली कही गई है[4]। शूद्रों का प्रमुख कार्य सेवा ही था ।

आश्रम व्यवस्था -

वैदिक काल में आश्रम व्यवस्था का पूर्ण स्वरूप प्राप्त होता है । वैदिक आर्य एक धर्म प्रधान जाति थे । उनका देवताओं की सत्ता, प्रभाव तथा व्यापकता में दृढ विश्वास था । उनकी कल्पना में यह जगत पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश इन, तीन विभागों में विभक्त थी और प्रत्येक लोग में देवताओं का निवास था । वे अग्नि के उपासक एवं वीर पुरुष थे जो अग्नि में विभिन्न देवताओं के उद्देश्य से सोम रस की आहुति दिया करते थे । यज्ञ उनके धर्म का विशिष्ट अंग थी । ऋग्वेद

---

(1) अथर्व0 19.32.8.

(2) " 12.4.9.

(3) " ह्विटनी का अनुवाद (अथर्ववेद का) पृ0 694.

(4) अथर्व 12.3.13. डा0 रामशरण शर्मा, शूद्राज इन एन्शियण्ट इण्डिया पृ0 24.

के समय में यज्ञादि अपने लघुकाय में था[1] ज्यौ-ज्यौ आर्यों का प्रभुत्व बढता गया अथर्ववेद में आश्रम शब्द का प्रयोग तो नही मिलता लेकिन इसका पूर्व रूप अवश्य ही प्राप्त होता है ।

एक सम्पूर्ण सूक्त में [2] ब्रहमचारी का वर्णन मिलता है । इसमें ब्रहमचारी को समाज की आधारशिला कहा गया है। ब्रहमचर्य का प्रारम्भ विद्यारम्भ से होता था । एक मन्त्र उपनयन के किये हुए ब्रहम्चारी का उल्लेख करता है[3] इससे ज्ञात होता है कि उपनयन किया हुआ व्यक्ति ही विद्याध्ययन का अधिकारी था । ब्राहमचारी उपनयन के पश्चात आचार्य के पास रहकर विद्याध्ययन करता था । इस काल में विद्यार्थी को कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था । गुरू से दीक्षित होकर वह कृष्ण मृगचर्म धारण करता था । मूँछ दाढी लम्बी-लम्बी होती थी ।[4]

ब्रहम्चर्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो
दीर्घश्मश्रुः ।।

वह मेखला पहनता था और समिधा लाकर[4] नित्य अग्नि सूर्य, चन्द्र आदि देवों को समिधा प्रदान करता था [5] वह भिक्षाटन करके अपना तथा अपने गुरू का पालन करता था ।[6] ब्रहमचर्य जीवन का अधिकार ब्राहमणों के अतिरिक्त क्षत्रियों

- -

§1§ अथर्व0 11.5
§2§ " 11.5.3
§3§ " 11.5.6.
§4§ " 11.5.4
§5§ " 11.5.13
§6§ " 11.5.4.

और स्त्रियों को भी था । आचार्य ब्रहमचारी को महान अपराध करने पर मृत्यु दण्ड तक दे सकता था ।[1] आचार्य की तुलना वरूण से की गयी है । इन सब के साथ ही आचार्य अपने शिष्य की संरक्षा भी करता था । कुमारियों को ब्रहमचर्य पालन करने से योग्य पति प्राप्त हो सकता था[2] "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।। छात्र के रोग ग्रस्त होने पर औषधि आदि के द्वारा उसका उपचार भी करते थे इस प्रकार गुरु चन्द्रमा के समान दयालु होते थे ।

ब्रहमचर्य जीवन के पश्चात् गृहस्थ जीवन प्रारम्भ होता था । गृहस्थ स्वधा प्रदान करने के लिए पितरों का और यज्ञ करने के लिए देवों का ऋणी था[3] तथा तीनों अग्नियों का यथा समय सेवन करता था ।[4] अतिथि सेवा गृहस्थों का महत्वपूर्ण कार्य था । यह कार्य इतना प्रतिष्ठित था कि इसे एक यज्ञ ही कहा गया है । जिससे संतान पशु॰ कीर्ति इष्टापूर्व और स्वर्ग का लाभ प्राप्त होता था ।

इष्टं च वा एषपूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वो तिथेरश्नाति ।
प्रजां च वा एषां पशूश्च । कीर्तिं च वा एष यशश्च ।।[5]

जो व्यक्ति इसकी उपेक्षा करता था उसके ज्ञात - अज्ञात सभी पुण्यों का क्षय हो जाता था । अथर्ववेद में एक सम्पूर्ण सूक्त में अतिथि सत्कार की प्रत्येक गति

---

§1§ अथर्व० 11•5•14

§2§ " 11•5•18•

§3§ " 12•4•32

§4§ " 9•6•30

§5§ " 9•6•31 - 35•

विधि को यश की गतिविधियों से सभीकृत किया गया है ।[1] प्रत्येक आश्रम क्रमशः गृहस्थाश्रम पर ही आश्रित होते है। इसलिये सभी आश्रमों पर इसका महत्वपूर्ण स्थान है । ब्रह्मचर्य आश्रम का काल लगभग 25 वर्ष का माना गया है । इस आश्रम में व्यक्ति अध्ययन पूरा कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है तभी उसका विवाह भी होता है। पच्चीस वर्ष के बाद विवाह का विधान होने से ऐसा लगता है कि उस समय भी विवाह दो विकसित एवं परिपक्व व्यक्तियों का सम्बन्ध था । विवाहित दम्पति इतने प्रौढ होते थे कि वे प्रेमी, पति और पत्नी तथा शिशुओं के माता पिता हो सकते थें ।[2] इससे स्पष्ट है कि कन्या का विवाह प्रौढावस्था में उसके रजोदर्शन के पश्चात् ही होता है । विवाह के पश्चात 50 वर्ष की अवस्था तक व्यक्ति अपने पारिवारिक विकास में संलग्न रहता था ।

इसके पश्चात वानप्रस्थ आश्रम प्रारम्भ होता था 50 वर्ष की अवस्था के बाद यह आश्रम प्रारम्भ होता था । इसमें व्यक्ति गृह का त्याग कर वनवासी हो जाता था इस अवस्था में दाढी मूछ एवं शिर के बाल बड़े-बड़े हो जाते थे । इस समय यह वनवासी तपस्या में संलग्न रहता है [3] ब्रह्मविद् लोग परमतत्व को ढूढने में सदा चिन्तनशील रहते थे । एक दूसरे मन्त्र में कहा गया है कि जो पुरूष परमतत्व को जानता है वह स्वयं परमेष्ठिन् हो जाता है । या परमेष्ठिन् को जानता है ।[4]

---

(1) अथर्व0 9·6·3·

(2) " 2/36/3

(3) " 19·41·1·

(4) " 10·[illegible]·17·

उनका विश्वास था कि शरीर में प्रत्येक अंग में तैतीस सौ देवता निवास करते है जिनका अस्तित्व ब्रहमविद् एक ही देव में देखते है [1] एक मन्त्र में कहा गया है कि नौ द्वार वाले औरतीन गुणों से आवृत कमल ‡ शरीर रूप ‡ में आत्मा बैठा हुआ है जिसे ब्रहमविद् ही जानते है [2]

सन्यास आश्रम -

जीवन का अन्तिम भाग अर्थात् 75 वर्ष के पश्चात् यह आश्रम प्रारम्भ होता ह था । सन्यासी को "भिक्षु" तथा " यति" भी कहा जाता था । यह सिद्धावस्था का जीवन था । व्यक्ति जब वानप्रस्थ अवस्था में कठोर तपस्याकर सांसारिक दु:खों पर विजय प्राप्त कर लेता था उस समय उसे कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता था । सन्यास आश्रम में प्रवेश के लिए पूर्ण वैराग्य एवं ज्ञान का होना अनिवार्य था । इस आश्रम में प्रवेश के लिए व्यक्ति को गुरू की आवश्यकता होती थी । महाभारत में कहा गया है कि सन्यासी को चाहिए कि वह मन और इन्द्रियों को संयम में रखता हुआ मुनिवृत्ति से रहे, किसी वस्तु की कामना न करें । अपने लिये अपने लिये मठ या कुटी न बनवाने निरन्तर भ्रमता रहे और जहां सूर्यास्त हो वहीं ठहर जाय । प्रारब्धवश जो मिल जाय उसी से जीवन निर्वाह करें । आशातृष्णा का सर्वथा त्याग करके सबसे प्रति समानभाव रखे । इन्हीं सब धर्मों के कारण इस आश्रम को क्षेमाश्रम ‡ कल्याण प्राप्ति का स्थान ‡ कहते है [3]। मनुस्मृति के अनुसार सन्यासी

---

‡1‡ अथर्व 0 10·7·27·

‡2‡ " 10·8·44

‡3‡ महाभारत - शान्ति पर्व· 9·10·

इस संसार में सत्योपदेश करता । शिर के बाल दाढी मूछ नख आदि का समय-समय पर छेदन कराता रहे । सन्यासी के लिये अनेक व्रतों का विधान किया गया है । सन्यासी इन्द्रियों के निरोध, रागद्वेषादि दोषों के क्षय और निर्वैरता से सब प्राणियों का कल्याण करता है वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।[1] सन्यासी के लिये एक समय भोजन, एक ग्राम में एक बार भोजन । निजी जाति या वर्ग विशेष में भेद न करें । सन्यासी को द्रव्य और अग्नि का स्पर्श वर्जित था । सन्यासी की अन्त्येष्टि क्रिया उसके घर वाले कर देते थे । इसीलिए सन्यासी को इहलौकिक जगत की दृष्टि से मरा हुआ माना जाता है । सन्यासी समस्त भौतिक वस्तुओं के प्रति अनासक्त भाव रखते हुये साधनारत रहता है । वह निवृत्ति नियमों का अक्षरसह पालन करता ह और आत्मज्ञान की प्राप्ति में संयम पूर्वक संलग्न रहता था । समाज को उसके जीवन से अनुशासन और उद्देश्य की पूर्ति की प्रेरणा प्राप्त होती थी ।

प्रतिवेदन -

कुमारी कन्या को विधिपूर्वक आचरण युक्त जीवन बिताना पड़ता था, क्योंकि तभी उन्हे युवापति प्राप्त हो सकता है ।[2] पति प्राप्ति के लिए समाज में अभिचारों और प्रार्थनाओं का भी प्रयोग होता था । विवाह सम्बन्धी इस कृत्य को पतिवेदन कहा गया है । -

धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् ।।[3]

- -

§1§ मनुस्मृति -6 /49-52-60·

§2§ अथर्व0 - 11·5·8·

§3§ " 2·36·2

विवाह के प्रसंग में धातृदेव को ही वर ढूढने वाला कहा गया है। इसके लिए मेधावी वर धाता ने ढूढा[1] इसी प्रकार सोम एवं सविता से भी प्रार्थना की गयी है।

बहु-विवाह -

इस काल में पुरूष एक से अधिक पत्नियाँ रख सकता था। उनकी अन्य पत्नियाँ सपत्नी कहलाती थी। एक मंत्र में सपत्नी के विरुद्ध एक औषधि का प्रयोग किया गया है। परिवार में पत्नी का सम्मान था वह पति की अर्धांगिनी कहलाती थी और सभी सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में हिस्सा लेती थी। बाल-विवाह नही होते थे। यदि कोई स्त्री पुत्रहीन हो तो पुत्र प्राप्ति के लिए पति के छोटे भाई से पुत्र उत्पन्न करने अथवा नियोग (अस्थायी विवाह) के द्वारा पुत्र उत्पन्न करने का अधिकार था। सती प्रथा के उदाहरण केवल राजवंशों में ही प्राप्त होते थे। पत्नी अभिचारिक मन्त्रों के द्वारा अपनी सपत्नी पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेती थी और अपने पति की सर्वाधिक प्रिय बनी रहती थी[2] राजा नियमित रूप से तीन पत्नियाँ रखता था। जिन्हें क्रमशः महिषी परिवृक्ता और वावाता कहा जाता था। महिषी ही प्रधान होती थी[3] परिवृक्त स्त्री राजा की उपेक्षिता पत्नी होती थी।[4] पिशल[5] ने इसे निःसंतान स्त्री माना है।

---

(1) अथर्व0 2·36·2

(2) " 3·1·81·,3·18·4·

(3) " 2·36·3

(4) ग्रिफिथ अथर्ववेद का अनुवाद, भाग-2 पृ0 436 अथर्व0 20·128·10

(5) उद्धृत वैदिक इन्डिया भाग-1, पृ0 542·

खाद्य एवं पेय -

वैदिक आर्यों ने अन्न की भूरि-भूरि प्रशंसा की है ।

यस्यामन्नं व्रीहियवौ - - - - - -भूम्यै पर्जन्य पत्न्यै

नमोस्तु वर्षमेदसे ।[1]

इसी हेतु वे जौ और धान्य की उत्पादिका पृथ्वी की भावुकता पूर्ण प्रार्थना करते है । अथर्ववेद के काल तक आते-आते जौ और चावल का प्रमुख रूप से उत्पादन होता था । इन दो अन्नों का नाम साथ-साथ प्राप्त होता है । इनकी उपयोगिता के कारण ही इन्हे स्वर्ग के दो पुत्र और औषधि कहा गया है[2]। सम्भवत: जौ को पीसकर पुरोडाश बनता था और खाने के पूर्व उसमें घी लगा दिया जाता था[3] एक मंत्र में जौ और चावल खाने का वर्णन मिलता है।[4] पुरोडाश यज्ञीय चपाती को कहा जाता था और चावल से कई प्रकार के ओदन पकाये जाते थे । चावल घी·मधु सुरोदक आदि के मिश्रण से पके चावल को ब्रह्मास्यौदन कहा जाता था।[5] इसी प्रकार पाँच प्रकार के पके चावल को पंचौदन तथा शतौदन आदि भी बनता था ।[6] पके चावल मधु और घी मिलाने से स्वर्गौदन बनता था । इस काल में साँवा का भी भात बनाया

- -

(1) अथर्व 12·1·42·

(2) " 8·7·20

(3) " 10·9·25

(4) " 6·140·2

(5) " 12·3·18·19

(6) " 9·5·27·

जाता था । भोजन का अन्य अन्न उड़द भी था [1]

अतिथि सत्कार में मांस खिलाने का भी उल्लेख मिलता है । [2] अतः कुछ लोगों के भोजन में मांस भी रहा होगा । परन्तु गोमांस नितान्त वर्जित था । गायों को अवध्य समझा जाता था । गायों को काटना क्रूरता थी और उनका भक्षण निर्दयता ।[3] जो वशा गाय को भी अपने घी पकाता था । उसकी सन्तान नष्ट समझी जाती थी ।[4] इस काल में भोजन में पेय का भी स्थान था । दूध का भोजन में विशिष्ट स्थान था । गायों का पालन अधिक मात्रा में होता था । धेनु गायें बहुत दूध देती थीं[5]। गृष्टि गाय का दूध अमृत के समान मीठा कहा गया है ।

अथर्ववेद में सुरा का उल्लेख मिलता है[6]। एक मंत्र में सुरोदक का उल्लेख मिलता है आर्यों को सोमपान अत्यन्त प्रिय था । इसके पीने से शायद विष का भी प्रभाव समाप्त हो जाता था ।

" स सोमं प्रथमः पापौ स चकारारसं विषम् "[7]

---

(1) अथर्व - 6·140·2·

(2) " 9·6·41

(3) " 5/19·5

(4) " 13·4·38

(5) " 12·1·34

(6) " 8·9·24

(7) " 15·9·2

यज्ञ विशेष के अवसर पर इसका पान किया जाता था, पीने के पूर्व ऋत्विज लोग इन्द्र को अर्पित कर देते थे[1] रस निकालने के लिए सोम के पौधे को ग्रावा (पत्थर विशेष) में कूटा जाता था[2] भोज्य पदार्थों में मधु भी सम्मिलित थी। अतिथि के भोजन में मधु भी दिया जाता था। यज्ञीय भोजन में मधु भी सम्मिलित थी। स्वयन्त्र के ओदन में मधु मिलाकर ब्रह्मरयौदन तैयार किया जाता था[3] मधु की मिठास को ध्यान में रखते हुए ही - मेरी चाल मधुरी हो मै मधु युक्त वचन बोलूं मै मधु के सदृश बनूं[4] ऐसी कामना एक मन्त्र में की गयी है। तेल भी भोजन में प्रयुक्त किया जाता था। एक प्रसंग में अग्नि में तिल का तेल समर्पित किया गया है।

इस प्रकार वैदिक युग में भी भोजन की समुचित व्यवस्था थी।

---

(1) अथर्व0 4·34·6

(2) " 4·5·1·

(3) " 12·1·38

(4) " 8·6·15

(5) " 4·3·6·

(6) " 1·34·3

<u>आर्थिक जीवन</u>- वैदिक युग में पर्यटन की स्थिति को छोड़कर व्यवस्थित तथा स्थायी जीवन व्यतीत करने लगे थे। आखेट आर्यों की जीविका का महत्वपूर्ण अंग था। एक मन्त्र में मृग, सिंह, व्याघ, श्रृगाल, भेड़िया, और ऋक्ष आदि का उल्लेख मिलता है।[1] इससे प्रतीत होता है कि उन्हें आखेटक पशुओं का ज्ञान था। एक दूसरे मन्त्र में हिरण के अजिन (काला चर्म) का उल्लेख है।[2] जो हिरण के आखेट की ओर संकेत करता है ।

<u>कृषि</u>- तत्कालीन लोगों का विश्वास था कि सर्व प्रथम कृषि का प्रारम्भ पृथीवैन्य ने किया था ।[3] इस सम्बन्ध में प्राप्त आख्यान से विदित होता है कि जब विराज शक्ति गाय के रूप में मनुष्य लोक में पहुँचो तो वेनु के पुत्र पृथी ने पृथ्वी पर अन्न और कृषि को दुहा । वेनुपुत्र पृथी या पृथु का वर्णन पुराणों में विस्तार से मिलता है। वे ही प्रथम राजा थे जिन्होंने कृषि कर्म के अयोग्य पथरीली भूमि को समतल कर कृषि के उपर्युक्त बनाया जिसके कारण भूमि का ही नाम उनके नाम पृथी पर पृथ्वी रखा गया ।[4]

सूत्रकाल में कृषि आर्थिक जीवन की आधार शिला थी। व्यक्ति की सम्पन्नता का अनुमान उसकी कृषि समृद्धता के आधार पर लगाया जाता था। शाखायन गृह सूत्र कृषि में प्रयुक्त विधियों तथा हल चलाने के लिए बैलों का प्रयोग करता है ।

---

(1) अथर्व--12/1/49

(2) अथर्व--5/21/7

(3) तैत्ति बा० 3/8/10/4-8,10,24

(4) द्र० श्रीमद्भागवत् स्कन्द 4 अध्याय 16 से 23

कृषि सम्बन्धी कार्य सम्पादन में मन्त्रों द्वारा आहुतियाँ दी जाती थी। चावल तथा जौ मुख्य उत्पादन थे। धरती बहुत सी विधियों एवं धन धान्य से पूर्ण थी।[1] लगान के रूप में किसान राज्य को पैदावार का $\frac{1}{10}$ से $\frac{1}{6}$ भाग दिया करते थे। बंजर तथा परती भूमि का भी उल्लेख मिलता था। वर्तमान काल के कृषक की भाँति वैदिक कृषक भी हल और बैलों के सहारे खेती करते थे। उस काल में हलवाहों या खेती करने वालों को कीनाश सीरपति कहा जाता था।[2] सीर हल का वाचक है। कृषकों के पास छः पर आठ बैलों की खेती थी।[3] हल बहुत बड़े होते थे। कृषि भूमि कृषक की अपनी निजी सम्पत्ति थी जब कि चारागाह ग्राम समाज का अधिकार था। हल के ऊपर रखने के लिए जुआँ होता था जिसमें रस्सियों से बैलों का गला बाँधा जाता था। हल का अन्य प्रसिद्ध नाम लाँगल था।[4] हल के अगले भाग को फाल कहा जाता था। यह कहना कठिन है कि फाल धातु का बना था या नहीं। प्रो० ब्लूमफील्ड का कथन है कि पवीर (नोक) धातु का बना होता था। यह खदिर की लकड़ी का बना हुआ होता था। खदिर की बनी नोक धरती जोतने में समर्थ थी।[5] हलवाहा अष्ट्रा (पैना) से बैलों को हाँकता था।[6]

---

(1) अथर्व- 12/1/44

(2) अथर्व- 6.50.1

(3) अथर्व- 4-11-10

(4) अथर्व- 3.17.2

(5) शतपथ ब्रा -13.4.4.9

(6) अथर्व 3.17.6

सूत्रकार कौशिक ने पितृ मेघ के प्रसंग में क्षत्रियों के हाथ में धनुष तथा वैश्यों के हाथ में अष्ट्रा ग्रहण करने का विधान किया गया है ।[1]

इनका दूसरा मुख्य पेशा पशु-पालन था । गाय, बैल ,भेड़, बकरी, घोड़ा, कुत्ता, गधा आदि के अतिरिक्त हाथी भी पाला जाने लगा था । इसके अतिरिक्त शिकारी मछुए सारथी कुम्हार , सुनार, लुहार, रस्सी बनाने वाले, टोकरी, बुनने वाले, धोबी ,नाई जुलाहा नर्तक ज्योतिषी चिकित्सक , गायक, जौहरी आदि का उल्लेख मिलता है जो उस काल विभिन्न व्यवसायों के प्रतीक है । कृषि के लिए खाद को महती आवश्यकता होती थी । इस काल में पशुओं की अधिकता होने से खाद की कमी नहीं थी[2] कृषि सामान्यतया आकाश के बादलों पर ही आधारित थी। उनका यह ज्ञान था कि जो कृषि वृष्टि होती है वह समुद्र का जल है ।[3] वर्षा के लिये वे प्रार्थना करते थे और कहते थे कि रंग बिरंगे मेढक बोले ।[4] वर्षा लोगों का प्राण है और स्वर्ग का अमृत है ।[5] अवर्षण से बचने के लिये मनुष्य उद्यम भी करता था । उस काल में कुये थे ।[6] एक स्थल में घड़े से लाये हुये जल का उल्लेख है ।[7]

- -

§1§ कौ० सू० -49.50

§2§ आथर्व- 6.14.1

§3§ आथर्व- 4.15-58

§4§ आथर्व- 4-15-12

§5§आथर्व - 4.15-10

§6§आथर्व- 5-31.879.4.16

§7§ आथर्व- 1.6.4

अथर्ववेद में तीन स्थलों पर खनित्रमा[1] शब्द आया है । वैदिक इन्डेक्स में " खनित्रमा" को सिंचाई के लिये व्यवहार में लायी जानी वाली कृत्रिम पानी की नहरों का द्योतक कहा गया है ।

विभिन्न कारणों से कृषि भी क्षति हो जाया करती थी इसके लिए एक सम्पूर्ण सूक्त में जौ को भली भाँति बढ़ने और उसके ढेर को कम न होने के लिए प्रार्थना की गयी है ।[2] इसके अतिरिक्त कृषि के महान शत्रु कीड़े चूहे आदि है। सम्पूर्ण सूक्त[3] में उनके विरूद्ध उपचार का वर्णन किया गया है। प्राकृतिक कारणों से (पाला, ओला सूखा) से कृषि क्षतिग्रस्त हो जाती थी । इस काल में जौ, धन मांस और तिल की खेती होती थी ।[4] एक मन्त्र में अधिक सांवा उत्पन्न होने की अभिलाषा प्रकट की गई है ।[5] एक दूसरे मन्त्र में ईख का उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि इस समय ईख की खेती होती थी ।[6]

उक्त विवरणों से ज्ञात होता है कि आधुनिक काल की भाँति

---

(1) अथर्व 1.6.4, 5.13.9

(2)अथर्व 6.142.1

(3) अथर्व 6.50 कौ० सू० - 51.17-22

(4) अथर्व - 6/104/1

(5) अथर्व- 20/135/12

(6) अथर्व- 1/34/5

अथर्वन काल में भी लोगों की जीविका का प्रमुख साधन कृषि था। इस समय कृषि कर्म बडा प्रतिष्ठित कर्म माना जाता था यहाँ तक कि इन्द्र भी हलवाहे का काम कर सकते थे।[1] और हलवाहे भी सैकड़ों सत्कर्म करने वाले होते थे।[2]

पशु पालन-

कृषि के अतिरिक्त वैदिक आर्यों का प्रमुख उद्योग पशु पालन था। दूध उनके भोजन का प्रधान अङ्ग था। बैल खेती के काम आते थे और गायें दूध देती थी। गायें रङ्ग बिरङ्गी होती थी। श्वेत गाय को कर्की कहा जाता था। एक मन्त्र में बछड़े की भी चर्चा मिलती हैं।[3] प्रथम बार दुही जाने वाली तथा अमृत के समान दूध देने वाली गाय को गृष्टि कहा जाता था।

"केवलीन्द्रागाय दुदुहे हि गृष्टिर्वश पीयुष प्रथम दुहाना[4]।

दूध देने वाली दुग्धा गाय को धेनु कहा जाता था।

" यज्ञ दुहानं सदमित प्रदीन पुमांस धेनु सदन रयीणाम।[5]

बाँझ गाय को वशा तथा बच्चा देकर बाँझ होने वाली गाय को सूतवशा कहा गया है। पशुओं के निवास स्थान को गोष्ठ कहा जाता था।[6] पशुओं की संरक्षा के लिए देव प्रार्थनाएं की जाती थी।[7]

1+ 2 अथर्व 6/30/1

[2] अथर्व 4/38/6-7

[3] अथर्व 8/9/24

[4] अथर्व 8/9/24

[5] अथर्व - 11/1/34

[6] अथर्व- 4/21/1 19/39/1

[7] अष्टाध्यायी - 4/3/100

अरून्धती नामक औषधिस रूद्र के पाश से उत्पन्न रोग को शान्ति का निवेदन किया गया है । इस प्रार्थना से गायें रोगमुक्त होकर अधिक दूध देने लगती थी । गायें अपनी उपादेयता के कारण और उनमें मनुष्यों की दैवी आस्था के कारण अवध्य समझी जाती थी । हल जोतने के लिए बैलों का प्रयोग किया जाता था । गाड़ी खीचने में समर्थ बैल को अनड्वान कहते थे । घोड़े के लिए अश्व, अर्वन आदि शब्द मिलते है तेज दौड़ने वाले घोड़े को वजिन कहा जाता था । घोड़े रथ खीचने के अतिरिक्त दौड़ में भी भाग लेते थे घोड़े के लगाम को रश्मि कहा जाता था और घोड़े के अवरोधक को अश्वामिधानी कहा जाता था ।[1] बकरी को अजा या अज कहते थे ।[2] भेड़ का भी बकरे के साथ उल्लेख है । बकरे की सीगें सम्भवत: औषधि के काम आती थी ।[3] उँट भी वैदिक आर्यों का उपादेय पशु था वह भरी रथों का खीचने का काम करता था ।[4] एक मन्त्र में हाथी का उल्लेख मिलता है ।[5] इसके अतिरिक्त अन्य जंगली पशुओं में मृग सिंह, व्याघ, गीदड़, भेड़िया और ऋक्ष आदि का उल्लेख प्राप्त होता है ।[6]

व्यवसाय- कृषि एवं पशुपालन के अतिरिक्त व्यापार का भी आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था । इस काल में वणिक, अपने सामानों को व्यापार के हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाता था

---

(1) अथर्व - 4/36/10
(2) अथर्व- 9/71/1
(3) अथर्व- 4/37
(4) अथर्व- 20/27/2
(5) अथर्व- 6/70/2

व्यापारी को वणिक के अतिरिक्त पणि भी कहा जाता था । अथर्व वेद संहिता में देवों को धन न देने वाले को पणि कहा गया है । इसीलए ब्राह्मण इत्यादि लोग उनके विरोध में रहते थे तथा वरूण आदि देवों से प्रार्थना करते थे कि ये पणियों का पक्ष न करें ।[1] इस काल में वस्त्र निर्माण का कार्य भी सम्पन्न होने लगा था । धागे को तन्तु कहा जाता था । तथा बाना को " ओतु "[2] कहा जाता था। खूटियों को मयूख कहा जाता था । सूती धोती को वासस तथा रेशमी वस्त्र को तार्प्य कहा जाता था ।[3] परूष्णी नदी के तीर पर बहुत ही बढ़िया पतले तथा रङ्गीन ऊनी वस्त्र तैयार होते थे । ऊन के बने शुद्ध वस्त्र पहनने का उल्लेख किया गया है।[4]

उस युग में धातु का भी व्यवसाय प्रारम्भ हो गया था । धातु को अयस् कहा जाता था । इसका पात्र बनता था ।[5] त्सिमर महोदय अयस् को लोहा न मानकर काँसा स्वीकार करते है ।[6] वैदिक इन्डेक्स के लेखक श्याम तथा लौह का क्रमशः लोहा और ताँबा अर्थकरते है ।

चाँदी को रजत कहा जाता था ।

---

§1§ अथर्व 5/11/7

§2§ अथर्व 14/2/51

§3§अथर्व 18/4/31

§4§ऋग्वेद 10/75/8

§5§अथर्व - 8/10-22

§6§ आल्टिन्डिशे लेबेन, 52

चाँदी के पात्रों का प्रसङ्ग मिलता है। " रजतः पात्रं पात्रम् [1] कुबेर का पुत्र रजत नाभि कहा गया है । उससे प्रतीत होता है कि चाँदी के आभूषण करधन के रूप में पहने जाते थे। सोना (स्वर्ण) के लिए दूसरा शब्द हिरण्य प्रयुक्त है । अथर्व वेद में इसका कई बार उल्लेख हुआ है । एक अन्य स्थल पर सौ सुवर्ण[2] सिक्कों को ब्राहमण को दान दिया गया है ।

वैदिक पौष्टिक कर्मों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वैदिक मानव का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन था । लगभग समग्र वैदिक ग्रन्थों में कृषि तथा पशुओं की समृद्धि से सम्बद्ध अनेक विधान प्राप्त होते है । पशुओं की समृद्धि से सम्बद्ध पौष्टिक विधानों के आधार पर प्रतीत होता है कि तात्कालिक मानव की समृद्धि पशुओं की समृद्धि पर आधारित होती थी । कृषि से सम्बद्ध पौष्टिक विधानों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश कृषि वर्षा पोषित हुआ करती थी । यही कारण था कि वैदिक आर्य सामयिक वृष्टि हेतु पौष्टिक कर्मों का विधान करते थे । इस प्रकार स्पष्ट है कि पौष्टिक कर्मों में तात्कालिक सम्पूर्ण आर्थिक जीवन प्रतिबिम्बित हो उठा है तथा वैदिक आर्य आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध थे ।

---

(1) अथर्व - 8/10/23

(2) अथर्व - 12/1/36

राजनीतिक जीवन -

वैदिक पौष्टिक कर्मों में अनेक कर्म राजा एवं राज्य की समृद्धि से संयुक्त है। अनेक वैदिक भाग यथा राजसूय, बाजपेय, अश्वमेध तथा सोमयाग आदि राज्य की समृद्धि हेतु ही सम्पन्न किये जाते थे। ऋग्वैदिक युग में जिस सभ्यता एवं संस्कृत का बोध होता है उसके विकास के लिए एक ठोस राजनैतिक आधार की आवश्यकता थी। ऋग्वेद के वर्णन से पता चलता है कि ऋग्वेदकालीन भारत में राजनैतिक एकता का विकास अपने उत्कर्ष पर था। ऋग्वेद में दशराज अथवा दस राजाओं के संघर्ष का वर्णन है।[1] यह संघर्ष उत्तर पश्चिम में बसे हुए पूर्वकालीन जन और ब्रह्मवर्त के उत्तरकालीन आर्यों के मध्य राज्याधिकार की प्राप्ति के लिए भरतों के राजा सुदास के साथ हुआ था। ऋग्वेद से लेकर अथर्ववेद तक में तात्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है। यद्यपि ये विवरण क्रम बद्ध नहीं है तथापि इनकों एक जगह एकत्र करने पर अथवा एक विचार श्रृंखला में पिरों देने से राजनीति के विभिन्न अंगों पर प्रकाश पड़ता है। कदाचित् कदाचित् अपने इन्हीं गुणों के कारण इस वेद को शतपथ ब्राहमणमें क्षत्रवेद कहा गया है।[2]

---

(1) ऋग0 6/33/2, 5/83/8.

(2) शतपथ ब्रा0।8.4.1।4। ब्लूमफील्ड सेक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट, बू0 भाग 42 पृ0 25 (भूमिका)

§1§ राजनैतिक संगठन -

गृह कुल पर परिवार सामाजिक व्यवस्था के साथ-साथ राजनैतिक जीवन को इकाई थी । परिवार के प्रमुख को कुलाप - या गृहपति कहा जाता था पितृसत्तात्मक परिवार में पिता के पश्चात माता को पर्याप्त सम्मान प्राप्त था । कई गृह, कुल या परिवार के समूहों को मिलाकर ग्राम बनता था इसका प्रधान ग्रामकी होता था । लेकिन इसके निर्वाचन का विधान नही प्राप्त होता है ।

राष्ट्र -

राष्ट्र शब्द का प्रयोग राज्य या साम्राज्य के लिए कई स्थानों पर हुआ है । एक स्थान पर पुरोहित राजा को राष्ट्र की रक्षा के लिए आशीर्वाद देता है।[1] राज्य की प्राप्ति देवोंकी कृपा पर आधारित होती है थी । क्योंकि रोहित के एक मंत्र में राज्य प्राप्ति की कामना की गयी है ।[2] पृथिवी देवी राष्ट्र के लिए तेज और पराक्रम धारण करने वाली कही गयी है । एक दूसरे स्थान पर राजा परीक्षित का राज्य लोक कल्याणकारी माना गया है।[3]

क्षत्र -

इसका अर्थ है प्रभुत्व शासन और शक्ति । यह देवताओं और मनुष्यों दोनों

---

§1§ अथर्व 6•87•1

§2§ " 13•1•35

§3§ " 2•127•9•

के शासन के लिए प्रचलित था । उन लोगों की धारणा थी कि राजा द्वारा अपमानित ब्राह्मण राजा की शक्ति (क्षत्र) और तेज को समाप्त कर देता था ।[1] ऐसे क्षत्र की प्राप्ति के लिए मंत्र सिद्ध रक्षाकरण बांधे जाते थे । एक मंत्र से ज्ञात होता है कि एक व्यक्ति (सम्भवतः राजा) पर्णमणि से क्षत्र और धन प्राप्ति की प्रार्थना करता था ।[2] एक दूसरे मंत्र में - हे इन्द्र यह राजा अन्य शासकों में बलवान हो । तुम इस दैवी प्रजा पर शासन करो और तुम्हारा राज्य अजर और दीर्घायु।[3] बड़े राज्य को महाक्षत्र कहा जाता था ।

विश् - विशपति -

विश् का अर्थ भिन्न-भिन्न अर्थ किया जाता था ऋग्वैदिक काल में विशः कोई प्रशासनिक इकाई अथवा कबीले की भांति था । प्रोफेसर आप्टे का विचार है कि विश जन तथा ग्राम पर्यायवाची शब्द है । लेकिन मेरा अनुमान है कि कोई ग्रामों को मिलाकर विशः का संगठन किया जाता था विशः के प्रधान को विशपति कहा जाता था । विश का भिन्न भिन्न अर्थ है राजा के साथ

---

(1) अथर्व० 12·1·8

(2) " 3·5·2

(3) " 6·98·2

इसका अर्थ प्रजा प्रतीत होता है ।[1] इस प्रकार विशपति का अर्थ राजा या प्रजापति है । विशों का स्वामी एकराट कहा गया है ।

संसद -

वैदिक युग में संसद का उल्लेख मिलता है । इसका सायण ने इसका अर्थ सभा किया है ।[2] विहट्ने[3] ने इसका समीकरण जन सूह ( ) से किया है । ग्रिफिथ[4] ने परिषद् से इसका अर्थ किया है । परन्तु अथर्ववेद के एक सूक्त जिसमें सभा और समिति का वर्णन है में संसद को उल्लेख है - हे इन्द इन सभी संसदों का मुझे भागी बनाओं ।[5]

ग्रामणी -

ग्रामणी गांव का प्रधान होता था । त्सिमर[6] ने ग्रामणी को सैनिक कर्मचारी और व्हिटने[7] ने सेना की टुकडी अर्थ किया है । सायण ने इसे ग्राम नेता कहा है । इस प्रकार ग्रामणी नागरिक और सैनिक दोनों कार्यों का संपादन करने

---

(1) अथर्व0 3.4.2

(2) " 7.13.3

(3) व्हिटने अथर्ववेद का अनुवाद -पृ0 396 पर पुत्र 7.13.3 का अनुवाद

(4) ग्रिफिथ हिम्स आफ द अथर्ववेद भाग - 2 , पृ0 230, वनारस 1917.

(5) अथर्व 0 7.13.3

(6) आल्टिन्डिशे लेवेन, 171, उद्धत वैदिक , इन्डिया भाग -1, पृ0 - 276

(7) विहट्ने अथर्ववेद का अनुवाद, पृ0 92.

वाला गाँव का प्रधान प्रतीत होता है । एक मंत्र मे उदुम्बर मणि से प्रार्थना की गयी है कि तुम ग्रामणी हो, ग्रामणी उठकर अभिषिक्त होआ है वह मुझे तेज से सिंचित करे।[1] इससे प्रतीत होता है कि ग्रामणी का भी राजाओं की भाँति अभिषक किया जाता था ।

2- राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त -

वैदिक सूक्तों के अध्ययन एवं अनुशीलन से राज्य की उत्पत्ति के कई प्रमुख सिद्धान्तों की उपलब्धि होती है -

शासन सत्ता का दैवी उद्गम भी स्वीकार किया जाता था अथर्ववेद के कतिपय उद्धरण भी इस तथ्य के पोसक है । एक स्थान में सर्वप्रिय शासक परीक्षित का वर्णन है इस प्रसंग में उसे मनुष्यों में देव कहा गया है ।[2] दूसरे स्थल पर सम्प्रभुता प्राप्ति के संदर्भ में, कथन है कि राजा देवों का अंश प्राप्त करने वाला है ।[3] उस समय लोगों का विश्वास था कि देवगाष्ट राजा को राज्याभिषेक के लिये बुलाते थे ।[4] इसी भावना से प्रेरित होकर कदाचित् राजा को इन्द्र का मित्र

- -

§1§ अथर्व - 19·31·12

§2§ " 20·127·7

§3§ मनु अष्टानां लोक - पालानां वपुर्धारयते पुन: उद्धत मल्लिनाथ टीका रघुवंश 2· 75 पर ।

§4§ अथर्व 4·9·2·

कहा गया है ।[1] इतना ही नही राज्य की आधार भूत संस्थायें प्रजापति की पुत्र और पुत्रियाँ कही गयी है । तथा शासक वर्ग स्वयं विराट् पुरुष की भुजाओं से उत्पन्न कहा गया है । अब हम उक्त तथ्यों के आधार पर राज्य की दैवी उत्पत्ति स्वीकार कर सकते है ।

अथर्ववेद के कई सूक्त राजा के निर्वाचन से सम्बन्धित है । [2] इससे ज्ञात होता है कि राजा किसी शर्त के पालन के लिए बाध्य होता था । राजा की राज्य में तभी तक स्थिति थी जब तक प्रजा जन का उसमें विश्वास था ।[3] उसका शासन तभी तक सफल हो सकता था जब सभा एवं समिति उसके अनुकूल रहे । इसके अतिरिक्त प्रजा ने राजा को कर देना स्वीकार किया था ।

अथर्ववेद के वर्णनों से उसकी संस्थाओं के क्रमिक विकाश का सम्यक् विवरण प्राप्त होता है ।[4] एक सूक्त में गृहपति संस्था, ग्राम संख्या, विश की परिषद

- -

§1§ अथर्व0 4•22•7

§2§ " 3•4/6•87, 6•88

§3§ " 6•87•1

§4§ " 8•10

§समिति§ और आमन्त्रण में क्रमश: पादक्षेप का वर्णन हुआ है ।

§3§ राज्य के घटक -

वेद में राज्य के सम्पूर्ण घटक यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है परन्तु ये क्रमबद्ध नहीं है। इनको क्रम से इस प्रकार प्रगट किया जा सकता है -

स्वामी -

राजा राज्य का स्वामी होता था।[1] इसका पद प्रतिष्ठित एवं उत्तरदायित्व पूर्ण था । इसको विशांपति " और एकराट कहा जाता था [2]

अमात्य -

राज्य का दूसरा घटक अमात्य वर्ग होता था । ये लोग राजा को समुचित मन्त्रणा देता था अथर्ववेद में सभा और समिति के पश्चात आमन्त्रण नामक संस्था का प्रसंग है । कदाचित् यह राजा के मंत्रिमंडल का द्योतक है ।

सुहृत -

राज्य का अन्य प्रमुख अंग सुहृत या मित्र होता था । एक स्थल पर उल्लेख है कि ब्राह्मण विरोधी शासक के मित्र उसके वश में नहीं रहते थे और

---

§1§ अथर्व - 3.4.1.

§2§ " 8.10.7

समिति उसके प्रतिकूल हो जाती थी । अतः राजा की सफलता में मित्र का महत्व प्रतिष्ठित भी था ।

केश -

विशपति के दो कर्मचारियों का एक स्थान पर उल्लेख है । इनमें से एक धन लाने वाला है तथा दुसरा संग्रह करने वाला । अन्यत्र देवों की नगरी का वर्णन है । जिसमें सोने के कोश का उल्लेख मिलता है ।[1]

राष्ट्र -

राज्य का पाँचवा घटक राज्य है । अथर्ववेद में इसका कई बार उल्लेख हुआ है । प्रत्येक उत्पत्ति से राष्ट्र की उत्नति में योगदान की कामना की जाती थी ।[2]

दुर्ग -

दुर्ग के अर्थ में पुर शब्द प्रयुक्त होता था । दुर्ग को लोहे के समान अभेद्य बनाया जाता था ।

बल-

प्रत्येक राज में सेना रहती थी । विश (प्रजा) का अनुगमन करने वाले राजा की सेना उसका अनुगमन करती थी ।[3]

---

(1) अथर्व० 10.2.31

(2) " 6.78.2.

(3) " 15.9.1-2.

राजा के कर्तव्य और कार्य -

वैदिक कालीन राजसत्ता कठोर नही थी । शासक प्रजा पर मनमाना शासन नहीं कर सकता था । राजा की प्रतिष्ठा प्रजा के पालन में ही थी शासक का जीवन कठोर व्रतों के पालन में व्यतीत होता था और ऐसे ही शासक के से राष्ट्र को कल्याण समझा जाता था । वह असत् की अवहेलना कर सदा सत्य का पोषक था । राजा ब्राहमणों से शुल्क नही लेता था । वह ब्राहमणों की सम्पत्ति को बडी सावधानी से संरक्षित करता था । वह ब्राहमण का वध नही कर सकता था । क्यों कि ऐसा करने से उसके राज्य का नाश संभावित था । इस प्रकार प्रजा की सम्पूर्ण कार्य प्रजारंजन के लिए ही था । एक सूक्त में राजा परिक्षित के उत्कृष्ट शासन का वर्णन है । राजा कृषि पर भी ध्यान देता था ।

राज्याभिषेक -

राजा का निर्वाचन होने के पश्चात था । इस कार्य को सूक्त में राजसूर्य कहा गया है । राज्याभिषेक की विधि का प्रारम्भ राजा के अभिषेक (पूर्वस्नान) से होता था । इस अवसर पर कई नदियों का जल मंगाया जाता था । पार्थिव जलों की अपेक्षा अन्तरिक्ष और स्वर्गीय जलों का आवहन किया जाता था ।[1] इस अवसर पर राजा सिंह का आलिंगन करता है । राजा के अभिषेक समारोह में विशाल

- -

(1) अथर्व 4.5.8.

जन समूह भाग लेता था और बड़े धूम धाम के साथ मनाया जाता था । राजा अभिषिक्त होकर प्राणियों के लिये दुग्ध आदि वस्तुओं की सम्यग् व्यवस्था करने के कारण उत्पन्न हुये लोगों का "अधिपति" कहा जाता था । राजा सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत रहते हुये सिंहासन पर पर्वत के समय अचल क होकर बैठता है । वह इन्द्र के समान चिरराज्य भोक्ता था । एक मंत्र से ज्ञात होता है कि राजा वर्ष तक राज्य करता था ।[1] अतः राजा आजीवन है । राज्य करता था । इसकी मृत्यु के पश्चात राजा का पुत्र राज्याधिकारी हुआ करता था और मंत्रीगण उसे राजा बनाते थे ।

वेदों में विहित पौष्टिक कर्मों में राजकर्म सम्बन्धी पौष्टिक कर्मों का अलग से वर्णन प्राप्त होता है । राजा व राज्यकी समृद्धि से सम्बद्ध अनेक पौष्टिक कर्म वैदिक वांगमय में प्रतिपादित है । राजा के युव राज्याभिषेक से लेकर राज्याभिषेक युद्ध दिग्विजय प्रजापालन साम्राज्य विस्तार प्रभृति कर्मों का विवेचन पौष्टिक कर्मों में विहित है वैदिक वांगमय में राजा को समाज का विशिष्ट व्यक्ति निरूपित किया गया है तथा उसके कर्मों का विवेचन संहिताओं ब्राहम्णो सूत्र ग्रन्थो व अवान्तर कालिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है । राजकर्म से सम्बद्ध राजसूय, वाजपेय सोम अश्वमेध आदि भाग को राजा से ही सम्बन्ध रखते है इन सभी यागों में राजा की ही समृद्धि की कामना प्राप्त होती है हस्तित्राशन[1] कर्म जिसमें शत्रु के हाथियों को उन्मत्त

---

(1) ऋ० को० गृ० - 14/1-6 और अथर्व० 1/1.

बनाने के लिये अभिचार किये जाते है । सांग्रामिक[1] कर्म जिससे संग्राम में युद्ध करने पर विजय प्राप्ति की म कामना की जाती है तथा सामने आने पर शत्रु पलायित हो जाते है। तथा इषु निवारण कर्म[2] जिसमें शत्रु प्रयुक्त हथियारों के अपनोदन की कामना की जाती है राजकर्म सम्बन्धी पौष्टिक विधान है । शत्रु मोहन कर्म[3] जय कर्म[4] और स्वसेना[5] रक्षण कर्म की राजनैतिक पौष्टिक कर्म है। स्वसेनोत्साहकरण[6] आदि का विधान युद्ध में विजय प्राप्त करने हेतु किया जाता था । अथर्ववेदीय कौ0 गृ0 में वैश्यराजार्थ सांग्रामिक विधि का भी वर्णन प्राप्त होता है।[7] इसके अतिरिक्त संग्राम सम्बन्धी विविध कर्म[8], परसेनात्रासन एवं विद्वेषण कर्म [9] अभय कर्म ।10

---

(1) द्र0 कौ0 ग0 - 14/7·11

(2) कौ0 ग0 14/12· अथर्व 1/26/9

(3) कौ0 गृ0 14/16/-23 अथर्व 3/1/1,3/2/1,3/19/1·

(4) " " 14/24, अथर्व 4/22/1·

(5) " " 14/25

(6) " " 14/26

(7) द्र0 कौ0 गृ0 - 15/6

(8) द्र0 गृ0 15/15/-18·

(9) कौ0 गृ0 - 14/15

(10) " " 16/7-13·

सपत्नक्षयत्री[1] कर्म राष्ट्र प्रवेश कर्म[2] राज्याभिषेक कर्म[3] तथा इन्द्र[4] महोत्सव आदि अनेक राजनीति से सम्बद्ध पौष्टिक कर्म प्राप्त होते है जिनके आधार पर तद्युगीन सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ।

---

§1§ को0 गृ0 - 16/14-26

§2§ " " 16/27-37

§3§ " " 16 से 17 कण्डिका

§4§ " " 14/1-22.

धार्मिक जीवन

सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में आर्यों का जीवन धर्म से ओत प्रोत था। धर्म ही वैदिक युग का प्राण है । ऋग्वैदिक युग से लेकर अथर्ववेद तक आते - आते इसका क्रमशः पल्लवन ही होता रहा । यहाँ तक कि सारी की सारी अथर्व वेद संहिता ऐसे ही धार्मिक तन्त्र मन्त्रों से भरी पड़ी है । उत्तर वैदिक काल में धर्म का जो विस्तृत स्वरूप परिलक्षित होता है उत्तरोत्तर उसमें कमी ही आती गई । इस काल में आर्यों के देवता वही रहे परन्तु उनके महत्व और आधार में परिवर्तन हो गया । इस काल में इन्द्र वरूण, अग्नि और सूर्य जैसे ऋग्वैदिक देवताओं का स्थान गौण हो गया । उनके स्थान पर शिव जो रूद्र का परिवर्तित स्वरूप था विष्णु अथवा नारायण और ब्रह्म अर्थात् प्रजापति का स्थान प्रमुख हो गया । देवताओं की संख्या में वृद्धि हो गई और उनमें से अनेक दिग्पाल गन्धर्व, यक्ष, नाग आदि माने जाने लगे। यक्षणियों और विभिन्न अप्सराओं का प्रादुर्भाव हुआ । इसके अतिरिक्त विभिन्न देवताओं की प्रकृति से जो उनकी उत्पत्ति का आधार था सम्पर्क समाप्त हो गया । अब देवताओं की मूलतया राक्षसों को नष्ट करने वाले के रूप में माना जाने लगा । इस युग में धर्म को प्रकृति उपासना परक समझा जाता था । उनके अनुसार वैदिक युग में प्रकृति के विभिन्न पक्षों की देवरूप में कल्पना कर उनकी उपासना की जाती थी लेकिन प्रकृति की इस रूप में उपासना धर्म की गहनता को उथला बनाता रहा । मूलरूप में प्रकृति के विभिन्न पक्षों या उपादानों तथा भावों की उपासना नहीं अपितु उनके अधिष्ठाता देवों की उपासना की जाने लगी । वैदिक धर्म के विकास

के सन्दर्भ में यही दृष्टि सत्य प्रतीत होती है । इस काल में कर्मकाण्ड और विभिन्न संस्कारों पर बल दिया गया । कर्मकाण्ड के कारण यज्ञ और बलि प्रमुख धार्मिक कार्य बन गये । पहले जिन कार्यों की पूर्ति गृहपति कर लिया करता था अब उसे ब्राहमण पुरोहित वर्ग करने लगा । मन्त्रों और स्तुतियों की भावना पर बल न देकर क्रिया विधि और उनके शुद्ध उच्चारण पर बल दिया जाने लगा । यह विश्वास किया जाने लगा कि उचित क्रिया विधि से देवताओं को प्रसन्न तो क्या उन्हें अपने वश में किया जा सकता है। विभिन्न कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञ किये जाने लगे और उनमें विभिन्न प्रकार की बलियाँ दी जाने लगी । उनमें से एक व्रात्य स्तोम यज्ञ था जिसके कारण अनार्यों का आर्य समाज में स्थान दिया जाने लगा । एक अन्य राजसूय यज्ञ था जो राजा के राज्याभिषेक के अवसर पर किया जाता था। एक अन्य अश्वमेध यज्ञ था जिसमें राजा एक वर्ष के लिए यज्ञ के घोड़े को विभिन्न स्थानों पर जाने के लिए स्वतन्त्र छोड़ देता था। जहाँ जहाँ वह घोड़ा जाता था वहाँ-वहाँ वह विजय करता था। अन्त में उस अश्व की बलि से वह यज्ञ समाप्त होता था । कर्मकाण्ड यज्ञ और बलि से विरक्त होकर तप का विचार भी इस काल में उत्पन्न हुआ । इसमें शरीर को कष्ट देकर मोक्ष प्राप्ति या परमधाम की प्राप्ति की जाती थी ।

भैषज्यानि—

अथर्ववेद में रोगों को दूर करने के लिए कुछ कृत्य किये जाते थे क्यों कि लोगों का ऐसा विश्वास था कि रोग पिशाचों, राक्षसों और

अभिचारकों आदि के कारण उत्पन्न होते है । इसलिए रोग निवारण के लिए चिकित्सकों की अपेक्षा तान्त्रिकों की आवश्यकता समझी जाती थी । ये तान्त्रिक पुरोहित होते थे जो किसी तंत्र में देवों का आवाहन कर रोग शान्त करते थे । एक तक्मनाशन सूक्त में तक्मन को भगाने के लिए अग्नि, सोम, वरूण और आदित्य देवों की सहायता आवश्यक मानी गई है ।[1] क्षय कुष्ठ आदि क्षेत्रीय रोगों से मुक्ति के लिए एक तन्त्र का सम्पादन किया जाता था। इसमें एक सूक्त[2] का पाठ करते हुए रोगी के रोगग्रस्त अंक को काम्पीत के खण्डों में बाँधकर तथा उसे चौरास्ते पर लाकर दूर्वा के गुच्छे से उसके शरीर को जल से सींचा जाता था ।[3]

आयुष्याणि---वैदिक व्यक्ति जीवन को सर्वथा सुरक्षित और दीर्घायु बनाने के लिए निरन्तरचिन्तन शील रहता था। वह चूड़ा कर्म, मुण्डन और उपनयन आदि परिवारिक उत्सवों पर दीर्घायुष्य के लिए प्रार्थनाएं करता था । अथर्व वेद के चार सूक्तों में स्वास्थ्य और दीर्घायु की प्रार्थनाएं मिलती है ।[4]

---

[1] अथर्व0-----5/22/1

[2] अथर्व0 --2/10 द्र0 कौ0 सू0 29/18

[3] कौ0 सू0 27/7-8

[4] अथर्व0 --2/28,3/11, 3/31, 7/53

तीन सूक्तों में मृत्यु और रोग, भय से मुक्ति के लिए स्तुतियाँ है।[1]

एकअन्य सूक्त में समृद्धि के लिए शङ्खमणि बाँधने का विधान किया गया है ।[2] दूसरे में दीर्घ जीवन धार ण करने के लिए पर्णमणि धारण करने का उल्लेख प्राप्त होता है । 3

आभिचारिकानि और कृत्या प्रतिहरणानि अभिचार या यातु विद्या सबसे भयानक कर्म है । इसका सम्बन्ध अङ्गिरस कुल से है । अभिचार कृत्य में अधिक तर अथर्व वेद के मन्त्रों का ही उपयोग है । यह दैत्यों अभिचारकों और शत्रुओं के विरुद्ध किया जाता था अर्थव वेद में इस श्रेणी के सूक्तों की संख्या 25 से भी अधिक है । सपत्न वाधन, नर्यैबाध विनाशन, पीड़न मारण, वशीकरण,, विद्वेषण, मोहन, स्तम्भन, चातम, उच्चाटन, आदि प्रमुख है ।[4]

अभिचार द्वारा राक्षसों को भगाने के कृत्य में इन्द्र देवता को सोमरस चढ़ाने का विधान है । इसमें इन्द्र से स्तुति की जाती है। आचार्य कौशिक ने इस सूक्त के दूसरे मन्त्र को राक्षसों से विमुक्ति के कृत्य में प्रयुक्त कियाहै।

{1} अथर्व ----5/30, 8/1-2

{2} अथर्व-----4/10/4

{3} अथर्व-----19/26/1

{4} द्र0 गोल्डस्टकर संस्कृत शब्दकोश अभिचार

इस कृत्य में चावल को पक्षियों के घोसले में पकाया जाता था ।[1] एक अन्य सूक्त में गृह, पशु और मनुष्यों को सुरक्षा के लिए दानव के प्रति अभिचार किया गया है ।[2] अभिचार कृत्य में कुछ औषधियों का प्रयोग किया जाता था । मन्त्र सिद्ध सदं पुष्पा पौधा यातुधानों और शत्रुओं के कष्ट से विवरण करने वाला समझा जाता था ।

" दर्शय मा यातुधानान्दर्शय यातुधान्य : ।
पिशाचान्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ।[3]

अपामार्ग औषधि द्वारा क्षुधामार तृष्णामार आदि कष्टकारक अभिचारों से मुक्ति दिलाई जाती थी अपामार्ग दुष्कर्म शाप और पाप कृत्यों के फल को नष्ट करने वाली है --

" क्षुधामार तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्व सदप मृज्महे।[4]

कच्चे मांस पर किये गये कृत्य भी इससे दूर किये जाते थे ।[5] कृत्य समाज के विभिन्न लोगों, ब्राह्मणों क्षत्रियों, स्त्रियों और शूद्रों आदि सभी के लिए किये जाते थे ।[6]

---

(1) कौ० गृ० 29/27, अथर्व 6/2/2
(2) अथर्व -2/11/3,5
(3) अथर्व 4/20/6
(4) अथर्व 4/17/6
(5) अथर्व 7/65/2, 4/17/4
(6) अथर्व 10/1/3

अभिचार में पौधों के अतिरिक्त मंत्र सिद्ध मणियों को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । राज्यकमी व्यक्ति अभिवर्तमणि का धारण करता था । इस मणि के प्रयोग से शत्रु तथा धन चुराने वाले एवं अभिचारकर्ता को वशीभूत हुआ समझा जाता था ।[1] अश्वत्थ की मणि शत्रुओं का नाश करने वाली कही गई है ।[2] खदिर की मणि शत्रुओं के विनाश के लिए और अपनी समृद्धि के लिए प्रयुक्त होती थी ।

स्त्री कर्माणि:-

वेद में स्त्रियों से सम्बन्धित कई कृत्य प्राप्त होते है । अथर्व वेद तो इसका विशेष विवरण ही प्रस्तुत करता है । कन्याएँ पति प्राप्त करने के लिए अभिचार का सहारा लेती थी । इसके लिए अथर्व वेद में निम्न मंत्र प्राप्त होते है ।

" आनो अग्ने सुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारीं सहनो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै ।[3]

" अयमा या त्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुप: ।
अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये।।[4]

---

[1] अथर्व0 ——1/29/1-2
[2] अथर्व0 ——3/6/6
[3] अथर्व --2/36/1
[4] अथर्व0 —6/60/1

इन मन्त्रों के अनुसार आचार्य कौशिक ने कुमारी को धान और तिलचबाने के लिए देने का विधान किया है । इसके बाद कुमारी को हवन करना चाहिए ।[1]

एक दूसरे सूक्त में प्रात: जागरण के पूर्व अग्नि में घृत की आहुति और घर के चारों कोनों मे बलि प्रदान करनी चाहिए । पुरूष में स्त्री के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए अथर्व वैदिक सूक्त[2] पढ़ते हुए स्त्री को पुरूष के मार्ग में उड़द बिखेरना चाहिए । स्त्री प्रेम प्राप्त करने के लिए सात सूक्तों का प्रयोग किया गया है ।[3] स्त्रियाँ अपनी सौतों के विरुद्ध कुछ कृत्य करती थी ।[4] बहुत से कृत्य स्त्री के दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए किये जाते थे । पुत्र प्राप्ति के लिए [5] बन्ध्या करने के लिए [6] गर्भ दृढ करने के लिए [7] तथा सुख प्रसव [8] के लिए विभिन्न तन्त्र मन्त्र किये जाते थे ।

---

[1] अथर्व -6/133 कौ० गृ० 36/13-14

[2] अथर्व - 1.34,2.30,6.8-9,6.102,3.25,6.139

[3] अथर्व-3.18.1

[4] अथर्व- सूक्त 2.30 पर सायण

[5] अथर्व- 7.35

[6] अथर्व 6.17

[7] कौ० गृ० 34/12/16

साम्मनस्यानि

अथर्व वैदिक लोग पारिवारिक वैमनस्य को देवताओं का प्रकोप समझते थे। वे मन्त्रों द्वारा परिवार में सुख शान्ति के लिए देवताओं से प्रार्थना करते थे। एक सूक्त में पुत्र को माता पिता के अनुकूल होने, पत्नी को पति के अनुकूल प्रिय भाषण करने, तथा भाई-भाई औरबहन-बहन में आपस में प्रेम करने के लिए शुभ कामनाएँ की गयी।[1] मंत्रणा समिति व्रत एंव चित्र की समानता के लिए एकमंत्र में समान हवि से आहुति करने का वर्णन है।

समानो मन्त्र समिति समानी समानव्रत सहचित्त मेषाम

समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभि संविशध्वम ।[2]

इसी प्रकार वरूण सोम अग्नि वृहस्पति और वसु यहाँ आये है सजातों तुम लोग समान मन होकर इस उग्र श्री के पास आओ ।[3]

राजकर्माणि- राज्य से सम्बन्धित कृत्यों को राजकर्माणि के अन्तर्गत किया जाता है। सभा और समिति में प्रभावशाली वचन कहने के लिए मैं कृत्य किये जाते थे। सायण और आचार्य[4] कौशिक एक सूक्त[5] को सभा में विजय प्राप्त करने के लिये प्रयुक्त करते है।

---

[1] अथर्व - 3.30.1

[2] अथर्व- 6.64.2

[3] अथर्व- 6.73.1

[4] कौ0 सू0 -38.7.8

[5] अथर्व -6.12.2,3

इस कार्य करने के लिये इन्द्र की प्रार्थना की जाती थी ।[1] आचार्य कौशिक[2] विजय की अभिलाषा वाले व्यक्ति को अपराजिता पौधे की जड़ को चबाते हुए सभा में पूर्वोत्र्र दिशा में प्रवेश करने का विधान करते है । और अपराजिताओं को मुख में रखकर ही बोलना चाहिए । इससे विजय होती है ।

राजा के निर्वाचन[3] अभिषेक [4] और उसकी सम्प्रभूता[5] सफलता पुनह स्थापना आदि के लिए भी कृत्य सम्पादित होते थे राजा अपनी भौतिक व आध्यात्मिक सफलता के लिये प्रार्थना करता था । युद्ध सम्बन्धी कृत्यों में युद्ध विजय [6] सुरक्षा[7] आक्रमण[8] मूर्च्छा[9] आदि के लिये भी अभिचार होते थे इन कृत्यों को सम्पादित कराने वाला पुरोहित होता था ।[10]

प्रायश्चिन्तानि:-

ज्ञात और अज्ञात कृत्यों और विचारों के अपराधों हेतु ऋण लेकर उसे न देने, जुआ खेलने में ... न ... अवैधानिक विवाह, छोटे भाई का का बड़े भाई से पहले विवाह करने आदि के लिए प्रायश्चित कर्म किये जाते थे ।

---

(1) अथर्व ----6.12.3

(2) अथर्व कौ० म० 38.18.-21

(3) अथर्व- 3.4

(4) अथर्व-4.8

(5) अथर्व-4-22

(6) अथर्व-1.20

(7) अथर्व 1.21,1.26

(8) 6.98

(9) अर्थव - 3.1.2

(10) अर्थव -3-19

इसके अतिरिक्त अपशकुनों ,भयङ्कर ग्रह यंत्रणा एवं दुर्घटना के विवारण के लिए प्रायश्चिन्त परक तन्त्र मन्त्र प्रयुक्त होते थे ।[1] क्पोत और उलूक ये दो पक्षी भी अशुभ सूचक समझे जाते थे । उनके प्रभाव को हटाने के लिए प्रायश्चित किये जाते थे ।[2] क्पोत पक्षी उनके घर न आवे इसके लिए वे अभिचार का विधान करते थे ।[3]

पौष्टिकानि

इसी प्रकार के कृत्य थे है जो घर निर्माण के लिए कृषि के प्रारम्भ बीज वपन फसल काटने और कृषि सुरक्षा के लिए किये जाते थे। ये सभी कार्य समृद्धिशाली होने के लिए किए जाते थे । कुछ ऐसे कृत्यों का भी वर्णन मिलता है जो किसी विशेष हवि के नाम से प्रचलित थे। ये काम्प इठिरयों के समान है ये सरल और स्वतंत्र प्रणाली वाले है । संप्राव्य हवि की आहुति कर्मरोग धन जन और पशु वृद्धि की कामना करते थे । ।[4] राजशक्ति का इच्छुक व्यक्ति यह हविमन्त्र के द्वारा इन्द्र को प्रदान करता था ।[5] इसका नाम यशोहवि था । नैरहस्त हवि शत्रु का हाथ काट लेने के उद्देश्य से यह हवि देवों को दी जाती थी

---

[1] प्रष्टव्य ब्लूमफील्ड अथर्व एण्ड गोपथ ब्राह्मण पृष्ठ 83-85

[2] अथर्व- 6/29/1

[3] अथर्व -6/27/1

[4] अथर्व0 -2/26/3

[5] अथर्व 6/39/1-2

[6] अथर्व- 6/40/1

सप्तर्षि हवि भय से मुक्ति के लिए सप्तर्षियों को दी जाती थी जिससे सभी देव प्रसन्न होकर रक्षा करें ।[1] समान हवि वैमनस्य को हटाने के लिए तथा हृदय मन्त्रणा आदि के अपने पक्ष में होने के लिए आहुतिदी जाती थी । भूतहवि त्वष्टा को देने से नवदम्पति के प्रेम में वृद्धि समझी जाती थी ।

सव-यज्ञ---- याज्ञिक कृत्य भौतिक सुख समृद्धि एवं शान्ति के लिए किये जाते थे। इनमें से अधिकांश में ब्राह्मणों को दान देना मुख्य था। ये यज्ञ साधारण होते थे । सम्भवतः इनका विधान सामान्य लोगों के स्वर्ग प्राप्ति के लिए किया जाता रहा होगा । ये सव यज्ञ बाइस है। इनमें से मुख्य निम्न है :-

(1) ब्रम्हौदन सव - इसमें पके चावल का तीसरा भाग ब्राहमणों को खिलाया जाता था और शेष दो भाग पितरों को खिलाया जाता था ।[2] इससे व्यक्ति मृत्यु के पश्चात स्वर्ग में पितरों के साथ सुखी समझा जाता था । ब्राहमणों को इसमें गाय और सुवर्ण दान में दिया जाता था ।[3] पुत्र की इच्छा करने वाले को भी ब्रम्हौदन करने का विधान था ।

---

(1) -6/40/1

(2) अथर्व0 - 11/1/5

(3) - 11/1/28

2-स्वर्गौदन- यह सोम यज्ञ का लाक्षणिक रूप है। जल लाना चावल को स्वच्छ करना, मधु और घी से सम्पृक्त करना और स्वर्ण दक्षिणा रखना इत्यादि कार्य सोमयज्ञ के विधियों के समान है ।

3-चतुः आशापालसव- इसमें प्राणियों के अध्यक्ष चारों दिशाओं को घृत और असाम हवि प्रदान की जाती थी । इससे व्यक्ति को नव प्रकार से रक्षा होती थी । यह काम्य यज्ञ है।[1]

4-कार्की सव- गाय के श्वेत बछड़े को कार्की कहा जाता था। इस यज्ञ में कार्की ब्राह्मण को दिया जाता था ।[2] एक बैल या ऋषभ की प्रशंसा सम्पूर्ण लोकों की रक्षा करने वाले सूर्य के समान की गई है । और वाजिन् [सूर्य] को अन्तरिक्ष से आवाहित किया जाता था और कहा जाता था कि वह कार्की की रक्षा करे तथा सोम रस का पान करें[3] नाम के अनुसार हम तुम्हे हवन देते है।[4]

5-अविसव- अविसव में श्वेत पैर वाला बकरा दिया जाता था। पके चावल के पाँच पिण्ड बनाकर उसके चारों खुरों और नाभि में रखा जाता था। इस बकरे को स्वधा के रूप में देने वाला व्यक्ति यमलोक के कर से मुक्त समझा जाता था।[5]

---

[1] अथर्व -1/31,1-4
[2] कौ0 सू0 66,13
[3] अथर्व- 4,38,5
[4] अथर्व- 4,38,7
[5] अथर्व -3,29,1

और वह स्वर्ग लोक को जाता था जहाँ बलवानों द्वारा निर्बलों से शुल्क नहीं लिया जाता था । इस बकरे के साथ जो पाँच पिण्डर अपूप देता था वह सूर्य और चन्द्र से रक्षित होता था ।[1]

6-अजौदन सव-

इस कृत्य से भी पका चावल और बकरा प्रदान करने वाला व्यक्ति स्वर्ग में देवों के साथ निवास करता था ।2

7-पंचौदन सव- इस सव में पाँच ओदन के चरूओं के साथ बकरे की बलि दी जाती थी । एक सूक्त में अजपंचौदन के विराट स्वरूप का वर्णन किया गया है ।[3] इस सबके सम्पादकों को नाना विधि ऐश्वर्यों की प्राप्ति बताई गई है। यदि इस पंचौदन दीक्षा को ब्राह्मणों के लिए कोई पुनर्विवाहिता स्त्री प्रदान करती थी तो उसका दूसरा पति भी समान लोक का अधिकारी होता था ।[4]

8-बहमार-यौदन उन का विश्वास था कि इस सब का ओदन ब्रहान के मुख से निकला है। उसमें पके चावल, घृत, मधु, सुरोदक, और चार पानी से भरे घड़ों की धाराएं प्रदान की जाती थी ।[5] यह ओदन स्वर्ग प्राप्ति के लिए ब्राह्मणों को प्रदान किया जाता था ।[6]

- -

[1] अथर्व- 3/29/5

[2] अथर्व- 4/14/2

[3] अथर्व-9,5

[4] अथर्व-9,5,28

[5] अथर्व- 4,34,6

[6] अथर्व- 4,34,8

9- <u>अतिमृत्युसव-</u> मृत्यु से बचने के लिए यह कृत्य किया जाता था। इसमें पका चावल ब्राह्मणों को दिया जाता था ।[1]

10-<u>अनुडुह सव-</u> इस सब में ब्राह्मणों को बैल प्रदान किया जाता था जो सम्पूर्ण दु:खों का नाश करने वाला था ।[2]

11-<u>पृश्नि और पृश्नगौसव-</u> इस पृश्निसव में चितकबरी गाय की बलि दी जाती थी ।[3] पृश्निगौ में भी गाय ब्राह्मणों को दी जाती थी ।[4]

12-<u>ऋषभ सव-</u> एक सूक्त 5 में ऋषभ सव का वर्णा है। जो व्यक्ति ब्राह्मणों को ऋषभ ‖ बैल‖ देता है उसका मन श्रेष्ठ हो जाता था तथा उसे अवध्या गया की सम्पत्ति प्राप्त होती थी ।[6]

13-<u>वशासव-</u> यह वन्ध्या गाय से सम्बन्धित है। इसमें वशा गाय की बलि का विधान है। अन्त में इसे ब्राह्मण को दे देना चाहिए । [7]

14- शालासव - इस सव में घास फूस का घर बना कर ब्राह्मण को दिया जाता था

‖1‖ अथर्व- 4,35

‖2‖ अथर्व- 4,11, सायणमन्त्र 4,11,3 पर द्रष्टव्य

‖3‖ अथर्व- 6,31

‖4‖ अथर्व-6,22, द्र कौ‖66,14‖

‖5‖ अथर्व- 9,4,19

‖6‖ अथर्व- 9,3,

‖7‖ अथर्व- 12/4

‖8‖ अथर्व- 9/3

15- वृहस्पति सव- इस शव में पके चावल की आहुति दी जाती थी जिससे द्वेषी नष्ट हो जाते थे।[1]

16-उर्वरा शक्ति- इस कृत्य में प्रशस्त एवं जुता हुआ खेत ब्राह्मण को दिया जाता था।[2]

गृह कर्माणि - ﴾संस्कार﴿ गृह सूत्रों में इनकी संख्या के विषय में मतभेद है। कहीं इनको सोलह कहा गया है कहीं इनको तेरह कहा गया है। इस प्रकार सभी गृह सूत्रों में इसकी अलग-अलग संख्या का भान होता है। कुछ प्रमुख संस्कारों को दिया जा रहा है जो धार्मिक जीवन के अभिन्न अंग है।

1- गर्भाधान - जन्म के पूर्व के संस्कारों में गर्भाधान प्रमुख संस्कार है। एक मन्त्र से ज्ञात होता है कि रात्रि के समय वधू अपने कक्ष में लायी जाती थी जहाँ वह और वर एक दूसरे के नेत्रों को अभिषिक्त करते थे।

" अक्ष्यौ नौ मधु -संकाशे अनीकं नौ समज्जनम।[3]
अन्त: कृणास्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ।।

अन्य मंत्र में पत्नी को जंघे पर बैठाने, हाथ पकड़ने और आलिङ्गित करने का सन्दर्भ है। हे पत्नी तुम भी सूर्या की भांति पति से समागम करो।[4]

﴾1﴿ अथर्व- 11/3

﴾2﴿ कौ० सू० 66,67

﴾3﴿ अथर्व -6,36,1

﴾4﴿ अथर्व- 14,2,32

—इस प्रकार मनुष्य पत्नी में बीज वपन करता था[1]। सिनी वाली देवी से गर्भ दृढ करने की प्रार्थना की गई है। इस प्रकार गर्भ धारण के समय देवी की प्रार्थना की जाती थी । जिससे गर्भ के संरक्षण एवं संवर्द्धन में महत्वपूर्ण सहयोग मिलता था ।

2- पुंसवन -

पुंसवन में पुत्र की प्राप्ति के लिए कुछ कृत्य किये जाते थे । एक मन्त्र से ज्ञात होता है कि इस उत्सव को शमी और अश्वत्थ वृक्षों के नीचे मनाया जाता था[2] स्त्री की कलाई में रक्षासूत्र बाँधा जाता था । रक्षासूत्र को सम्बोधित करते हुए कहा जाता था कि तुम रक्षा करने वाले हो राक्षसों को भगाते हो एवं संतति एवं धन को धारण करते हो ।[3] हे रक्षासूत्र, योनि के लिए गर्भ को धारण करो हे स्त्री तुम पुत्र को धारण करो[4] इस प्रकार इस संस्कार में स्त्री के गर्भ में पुरूष के संतति के आने की प्रार्थना की जाती थी । इस कृत्य में कुछ अभिचार भी किये जाते थे जिससे स्त्रियाँ बन्ध्या तक हो जाती थी । इस संस्कार के माध्यम से स्त्री को बन्ध्यात्व से मुक्त किया जाता था । तत्कालीन समाज में नारी को पुत्रवती होना श्रेयस्कर समझा जाता था अतः पुंसवन संस्कार में माँ बनने की आकांक्षा की जाती थी । गर्भिणी स्त्री को कुछ औषधि भी खिलाई जाती थी । उन दिव्य

---

(1) अथर्व० - 14/2/38

(2) " - 6/11/1 दु० कौ० गृ० सू० 35-8

(3) दु० कौ० गृ० सू० 35·11· अथर्व० 6·81·1

(4) अथर्व 6·81·2

औषधियों के प्रभाव से गर्भ सुदृढ होकर दिव्य पुत्र उत्पन्न करता था ।

3- सीमन्तोन्नयन -

यह संस्कार राक्षसो, दानवो आदि से गर्भ की रक्षार्थ किया जाता था[1]। गर्भ धारण के पश्चात् रोग व्याधि और पापों के कारण गर्भपात हो जाताथा । अत: वैदिक समाज में गर्भ संरक्षण के लियेऔषधियों का सेवन एवं प्रार्थनायें की जाती थी । गर्भ धारण के पश्चात उनमें तरह-तरह के रोग कीटाणु पहुँचकर हानि पहुँचाते थे । उन्हें औषधियों से नष्ट किया जाता था । यह वज्र नाम की औषधि दुष्ट विनाशक, असुरसंहारक एवं पाप निवारक थी इन्द्र से भी उसी प्रकार की कामना की गई है ।-

"स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ।"[2]

इस कार्य में मन्त्र सिद्ध श्वेत-पीत सर्षप का प्रयोग भी किया जाता था । उनका विश्वास था यह पीली सर्षप गर्भ में पुत्र की रक्षा करता है और उसे कन्या नहीं बनाता ।

4- जातकर्म - एक मन्त्र में कहा गया है कि प्रसव के अवसर पर विद्वान एवं श्रेष्ठ होता तेरा यजन करे और नारी भली भांति शिशु को जन्म दे एवं प्रसूता के शरीर

---

1. द्र0 हिन्दू संस्कार, पृ0 78: लेखक: डा0 राजबली पाण्डेय
2. अथर्व0 8·6·13

के संधि स्थान प्रसव करने के लिए विशेष रूप से ढीले हो जायें ।[1] ब्रह्मपुराण में पुत्र जन्म के अवसर पर किये गये इस कार्य को "नान्दीश्राद्ध" कहा गया है ।कुछ अभिचारिक प्रार्थनायें भी की जाती थी-" हे सुख प्रसविनी स्त्री, तू अपने अंगों को शिथिल कर दे, हे विष्कले तू गर्भ को नीचे की ओर प्रेरित कर मैं तेरी योनि को विस्तृत करता हूँ ..... ।"[2]

5- नामकरण :- इसके अनुसार हाँथ में पवित्र जल लेकर संस्कार आरम्भ किया जाता है । बालक को कौपीन के समान दो वस्त्र पहना कर शान्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए -

" शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ।"[3] इत्यादि ।

इसके पश्चात "नामकरण" करने का विधान प्राप्त होता है ।

6- अन्न प्राशन :-आचार्य कौशिक[4] के अनुसार अथर्ववेद में कुछ मन्त्र अन्न प्राशन के लिये प्रयुक्त है। शुभमुहूर्त में माता-पिता बच्चे को मधु मिश्रित खीर चटाते थे। यह कृत्य बच्चे के प्रथम दन्तदर्शन के अवसर पर किया जाता था ।

---

1. कौ0गृ0सू0 33.1, अथर्व0 1.11.1
2. उद्धृत, हिन्दू संस्कार, डा0 राजबली पाण्डेय , पृ0 94
3. अथर्व0, 1.11.2-3
4. अथर्व 8.2.14.द्र0कौ0गृ0सू0 58.13-18
   कौ0गृ0सू0 58.17: द्र0कौ0गृ0सू0 46.43-46

ये दाँत लगभग 63 माह पश्चात् निकलते थे ।

7- चूडाकरण एवं गोदान :- वैदिक वांगमय में कई स्थानों पर इसका एक ही मन्त्र में प्रयोग किया गया है । एक स्थान पर सविता से क्षुर लाने की प्रार्थना की गई है । गर्म जल से क्षुर को धोकर नाई बाल काटने के लिए कहा गया है ।[1]

8- उपनयन :- इसमें आचार्य द्वारा छात्र को उपनीत करने का विधान किया गया है । उपनयन संस्कार का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को भौतिक एवं पारमार्थिक दृष्टि से समृद्ध करना ही होता था । इस संस्कार के समय प्रयुक्त होने वाले विधानों तथा सम्पादित की जाने वाली क्रियाओं से भी यही बात स्पष्ट होती है । अथर्ववेद में कहा गया है कि आचार्य उपनयन करते हुए ब्रह्मचारी को गर्भ में धारण करता है। वह तीन रात्रि पर्यन्त उसे उदर में रखता है तदुपरान्त वह ब्रह्मचारी नवीन जन्म ग्रहण करता है और उसे देवगण देखने के लिए एकत्रित होते हैं -

"आचार्य उपनय मानों ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त: ।

तं रात्रीस्तिस्र उदरे विभर्तितं जातं द्रष्टुमभि संयति देवा: ।।"[2]

इसका प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि आचार्य उपनयमान ब्रह्मचारी को समाज में दिव्य रीति से प्रस्तुत करता था और उसे लोगों के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु देता था । इसी प्रकार इस संस्कार के समय सम्पन्न किये जाने वाले और कर्म

1· कौ०गृ०सू० 53·17-20; 54·15-16
द्र०, हिन्दू संस्कार, डॉ० राजबली पाण्डेय, पृ०121

2· अर्थव० 11·5·3

वस्त्र-परिधान, अश्मारोहण, दीक्षा, त्रिरात्रव्रत, मेधा जनन आदि का भी मुख्य उद्देश्य ब्रह्मचारी को लोगों के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बनाना तथा इस विशिष्ट प्रस्तुति से समाज का सक्रिय सदस्य बनाना होता था ।

9- <u>समावर्तन</u> :- वैदिक साहित्य के अध्ययन की तुलना एक सागर से की जाती थी और जो व्यक्ति विद्याओं का अध्ययन कर प्रकाण्ड पण्डित हो जाता था उसे यह समझा जाता था कि उसने सागर को पार कर लिया है ।[1] इस प्रकार का प्रसंग अथर्ववेद में आया है ।[2] इसमें ब्रह्मचारी के उपनयन, आचार्य के यहाँ रहन-सहन और कर्तव्य आदि सम्यक् निरूपण है । उसके अन्त में दीक्षा का उल्लेख महत्वपूर्ण है । इस प्रकार स्नान किया हुआ वह भूरे और लाल वर्ण वाला ब्रह्मचारी पृथ्वी पर अतीव शोभा पाता था । इस मंत्र में स्नान किया हुआ ब्रह्मचारी समावर्तन संस्कार से परिष्कृत हुआ सा वर्णित हुआ है । समावर्तन संस्कार का दूसरा नाम स्नान संस्कार भी है । जो स्नान को करने वाला होता है उसे स्नातक कहते हैं । अतः स्पष्ट है कि अथर्वकाल में भी ब्रह्मचर्य जीवन की समाप्ति का द्योतक स्नान संस्कार था ।

<u>विवाह संस्कार</u> :- विवाह[3] वर के घर पर ही सम्पन्न होता था जहाँ वधू पिता के घर से वर के घर रथ पर चढ़कर जाती थी । जब विवाह के उपरान्त वधू पति

---

1. हिन्दू संस्कार, पृ0 187, वाराणसी - 1957
2. अथर्व0 11.2
3. अथर्व 14.1:14.1.13-14

के घर के लिए प्रस्थान करती है।[1] सूर्या के विवाह में चित्र-विचित्र कपड़ों से आवृत्त अच्छे पहिये वाले रथ में बैठ कर पति के घर जाने का उल्लेख इस लिये सम्पूर्ण विवरण को देखने से स्पष्ट होता है कि विवाह वधू के घर में ही सम्पन्न होता था ।[2]

इस अवसर पर वधू को सात नदियों के जल को सैकड़ो प्रकार से पवित्र करके स्नान कराये जाते थे ।

" शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वाप: शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।।

शं त आप: शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्य तन्वं सं स्पृशस्व।।[3]

{हे वधू} तुम्हें स्वर्ण, पवित्र जल , युवा { जुआठ} और स्तम्भ आदि पवित्र करें एवं मंगलमय होकर सैकड़ों प्रकार के पवित्र जल तुम्हारे लिए शुभकारी हो । तुम्हारे पति का शरीर प्रिय हो शुभ हो तथा उसका स्पर्श तुम्हारे लिए सुखकारी होवे । ग्रिफिथ महोदय का मत है कि उपर्युक्त स्वर्ण स्त्री के आभूषण का द्योतक है । और युवा कृषि का चिन्ह है।[4] बेवर[5] का कथन है कि स्तम्भ वधू के दृढव्रत का प्रतीक है । स्नान के पश्चात सौ दाँत वाली कंघी से सिर के मैल निकालकर केश

{1} अथर्व 14•2•75

{2} ह्0 हि0 स0 डा0 राजबली पाण्डेय पृ0 259•

{3} अथर्व0 14•1•40•

{4} अथर्व वेद का अनुवाद भाग-2 , पृ0 166, टिप्पणी

{5} बेवर उद्धत अथर्ववेद का अनुवाद पृ0 167 टिप्पणी ।

विन्यास करती थी।[1] अपने नेत्रों में अंजन लगाती थी – चक्षुरा अभ्यंजनम् "[2]
स्नान के पश्चात नवीन वस्त्र धारण कराया जाता था । इस वस्त्र को वाधूय
कहा जाता था । उसका वस्त्र नवीन, संरभित एवं सुगन्धित होता था । –

नवं वासन: सुरभि: सुवासा उदागांजीव उषसो विभाति ।[3]

विवाह में पुरोहित वर-वधू को आशीर्वाद देता था ।

"इहैव स्तं मा वि योष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम ।

क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ।[4]

वर पक्ष के लोग मंगलमयी वधू की आकांक्षा रखते थे " सानो अस्तु

"सा नो अस्तु सुमंगली ।[5]

मंडप में बैठी वधू पति को सौ वर्ष जीने के लिए प्रार्थना करती है[6]
वर्तमान काल की भांति वैदिक काल में भी पाणिग्रहण, अश्मारोहण, वरगृह गमन,
वधू प्रवेश, गार्हपत्य अग्नि की पूजा, शय्यारोहण आदि कर्मों का विस्तृत उल्लेख
किया गया है ।

---

(1) अथर्व0 14·2·68

(2) " 14·1·6

(3) " 14·2·44

(4) " 14·1·22

(5) " 14·1·60

(6) " 14·2·63·

॥पंचम-अध्याय॥

पौष्टिक कर्मों का वैज्ञानिक आधार

अध्याय- पंचम

पौष्टिक कर्मों का वैज्ञानिक आधार :

पौष्टिक कर्म मानव को सुख समृद्धि प्रदान करने हेतु विहित किये गये है । यद्यपि ये कर्म-आभिचारिक परम्परा से जुड़े है और इनका सम्पादन यज्ञ-यागादि के माध्यम से किया जाता है । किन्तु इन कर्मों का पुष्ट वैज्ञानिक आधार है ये कर्म विज्ञान की सुदृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठित हैं । पौष्टिक कर्मों का सम्यक अनुशीलन करने से ज्ञात होताहै कि प्रत्येक कर्म में कुछ न कुछ वैज्ञानिकता अवश्य है । आधुनिक वैज्ञानिक परम्परा की कसौटी पर परखने पर इन कर्मों के वैज्ञानिकता स्पष्ट रूप से निखर उठते हैं । रोग-मुक्ति व वृष्टि कारक कर्मों में यदि चिकित्सा-विज्ञान और भौतिक विज्ञान प्रभावी है तो अपसकुन निष्कृति तथा ब्रह्म-वर्चस, तेजस तथा बल-बीर्यादि प्राप्त कराने वाले कर्म मानव मनोविज्ञान पर आधारित हैं । पौष्टिक कर्म हेतु विहित मन्त्रों तथा सन्दर्भों के आधार पर पौष्टिक कर्मों में प्राप्त प्रमुख वैज्ञानिक तत्वों का अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है :-

<u>पौष्टिक कर्मों में भैषज्य विज्ञान</u> :- भैषज्य विज्ञान पौष्टिक कर्मों का प्राण है । वैदिक युगीन आर्य स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए सतत् प्रयत्शील रहते थे । उनका भैषज्य विज्ञान भारतीय संस्कृति के लिए अमूल्य देन है । अथर्ववैदिक वैद्य विभिन्न प्रकार की चिकित्सा प्रणाली जानते थे । कुछ रोगों का विनाश तो वे शल्य क्रिया द्वारा कुछ का वानस्पतिक औषधियों से कुछ को मन्त्र-विद्या (इन्द्रजाल से) तथा अन्यों को रक्षाकरण्डों (मन्त्रसिद्धमणियों से) किया करते थे । इस प्रकार वे सम्पूर्ण शरीर के

रोगों के विशेषज्ञ माने जाते थे । अथर्ववेदीय मंत्र"शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः"[1] से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में सैकड़ों भिषक लोग थे और हजारों प्रकार की औषधियाँ थी । वैदिक समाज में भिषक कर्म यद्यपि ब्राह्मण के लिए वर्जित है- "ब्राह्मणेन भेषजं न कार्यम् ।"[2] किन्तु प्रमुख अथर्ववैदिक ऋषिगण इस कार्य को व्यवसाय मानकर कर रहे थे । कदाचित इसी कारण से अथर्ववेद की गणना वेदत्रयी के अन्तर्गत नहीं की जाती ।

यद्यपि ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद आदि संहिताओं तथा इनसे सम्बद्ध ब्राह्मणों आदि में भी भैषज्य तत्वों का उल्लेख प्राप्त होता है तथापि अथर्ववेद में तथा इससे सम्बद्ध गोपथ ब्राह्मण तथा कौशिक गृह्यसूत्र अतिशयता के साथ भैषज्य तत्वों का निरूपण करते हैं । इन वैदिक उल्लेखों में न केवल प्रमुख रोगों तथा उनके उपचारों का वर्णन प्राप्त होता है अपितु औषधियों के निर्माण की प्रक्रिया तथा उसमें प्रयुक्त होने वाली प्रमुख वनस्पतियों का उल्लेख भी विस्तार के साथ मिलता है ।

प्रमुख रोगों तथा उनके उपचारों का संक्षिप्त विवेचन :-

1- सर्व भैषज्य :- सर्पादि के काटने पर यह उपचार किया जाता है । परन्तु यह उपचार उसी स्थिति में होता है जब निश्चित विषलिंगी का ज्ञान न रहे । इसका वर्णन कौशिक[3] गृह्यसूत्र में विस्तार से किया गया है । सर्पादि के विषशमन हेतु

---

1. अथर्व० - 2/9/3
2. श० ब्रा० - 4/1/5/14
3. कौ० गृ० - 25/5

पौष्टिक कर्मों के अन्तर्गत नाना विधि विधान प्राप्त होते हैं । इसमें अथर्ववेद का निम्न मन्त्र प्रयुक्त होता है -

" ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । [1]

वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे.।।

उपर्युक्त मन्त्र से विषग्रस्त व्यक्ति के अंगों का प्रोक्षण किया जाता है ।

2- <u>अतिसार भैषज्य</u> :- जो व्यक्ति अति-मूत्र से पीड़ित हो उसके लिए इसका उपचार का विधान किया गया है । इसमें व्यक्ति को आकृति लोष्ठ या बल्मीक का चूर्ण पिलाना चाहिए तथा घृत से अभिव्यंजना करने का विधान है । इसमें अथर्ववेद के निम्न मन्त्र से बांधने का विधान प्राप्त होता है ।-

"विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरि धायसम् ।

विद्मो स्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम ।।" [2]

<u>मूत्रपुरीषोपचार</u> :- जिस व्यक्ति को मल त्यागने या मूत्र विसर्जित करने में कष्ट हो, उसे "विद्मा शरस्यइति" मन्त्र से रोगी को प्रमेहण अर्थात् हरीतकी आदि भेदनीय द्रव्य को बांधे तथा जीर्णेन्दुक को आखुकिर्यादि से जल में आलोडन करके पिलावे तथा -

---

1· अथर्व - 1/1/1

2· अथर्व0 1·2·1

"विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ।।"[1]

उपरोक्त मन्त्र से उसको पुटकानुवासन देना चाहिए । अश्वादि पर बैठाकर उसे भयभीत करने के लिए धनुष से बाण छोड़ना चाहिए तथा शिश्न को खोलकर मूत्र बिल फैलाना चाहिए । उसे आलाबिसोल का मिश्रण पिलाना चाहिए । यह कार्य मूत्र के कठिनाई से होने पर भी करना चाहिए ।

ज्वरोपचार :- ज्वर वैदिक युगीन आर्य का प्रमुख रोग माना जाता था । अथर्ववेद के कई[2] मंत्रों में इसका अनेकों प्रकार से वर्णन किया गया है । इसमें सैकड़ों प्रकार से वेदनायें होती है, इसका प्रकोप धीरे-धीरे बढ़ता जाता है । प्रथम दो दिनों में इसे "उपमेघु"[3] तथा तीसरे दिन वाले को "तक्मन"[4] कहा जाता था । अन्य दिनों के ज्वर को "अन्येघु"[5] तथा लगातार कई दिन रहने वाले को "सदन्दि"[6] कहा जाता था । इतना ही नहीं कभी-कभी तो यह पूरे वर्ष तक ग्रसित किये रहता था । ऐसे ज्वर को "शारद"[7] या "हायेन" कहते थे । इस ज्वर का ताप अग्नि के समान जलाने वाला था - "अग्निरिवास्य दहत[8] एति शुष्मिणः" ।

---

1. अथर्व० - 1·3·8; द्र०कौ०गृ०सू० 25·10-19
2. " - 1·25; 5·22; 6·20; 6·116; 19·31; द्र०कौ०गृ०सू० 30·6·
3. " - 7·116·2; द्र०वैदिक इण्डिया, भाग-1 पृ० 328-29
4. " - 1·25·7; 5·22·13
5. " - 7·116·2
6. " - 5·22·13
7. " - 19·39·10
8. " - 6·120·1

सोम भक्षणोपचार :- जब सोमरस पान, सोमपान अथवा सोमाभिषव के प्रसंग में व्याधि उत्पन्न हो जाय तब सोम मिश्रित समिध के आधान का विधान किया गया है ।

जलोदरोपचार :- कौशिक गृह्य सूत्र में इसका विस्तार से उल्लेख प्राप्त होता है।[1] इसके अनुसार जलोदर के रोगी को सामान्य रूप से अपसिंचित करने का विधान है । जलपूर्ण घट में दर्भापिंजली तथा 21 शालातृणों को डालकर उसका अभिमन्त्रण करके उससे व्याधित को नहलाने का विधान किया गया है। वरूणगृहीत जलोदर के रोगी को "विद्र धस्यबलासस्य"[2] मन्त्र से सिर पर सन्तापानयन करना चाहिए।

वात-पित्त एवं श्लेष्म भैषज्य :- इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को "जरायुज इति" मन्त्र से मांस तथा मेद का अभिमन्त्रण करके पिलाना चाहिए । मधु का अभिमन्त्रण करके श्लेष्म विकार में घृत का अभिमन्त्रण करके वात एवं पित्त दोनों एक साथ विकार होने पर पिलावें । तेल को अभिमन्त्रित करके वात-श्लेष्म विकार होने पर पिलाना चाहिए । सिर में दर्द होने पर व्यक्ति के सिर को मूँज की रस्सी से बाँधकर पूल्यों को बाये हाथ से लेकर दाये हाँथ से बिखेरता हुआ व्याधि स्थल तक जाना चाहिए । वहाँ "जरायुज इति" मन्त्र का पाठ करके उस जगह मूँज की रस्सी एवं वपन को फेंक देना चाहिए । इस विधान को वात ज्वर,कटिभंग,सिरोरोग, वातगुल्म, वात विकार तथा सर्वरोग में भी करना चाहिए । घृत को अभिमन्त्रित करके नासिका में छोड़कर विफल द्रव्य को रोगी को खिलाने का विधान है।

---

1. कौ0गृ0सू0 - 25·36; 26·39; 30·13
2. अथर्व0 - 6·126·1

कौ०गृ०सू० 29·30 के अनुसार "अस्थि स्रंसम् इति"[1] मन्त्र से श्लेष्म के रोगी को अपसिंचित करने का विधान प्राप्त होता है । कौ०गृ०सू० 30·6 में पित्त ज्वर का विधान प्राप्त होता है । इसमें सिर पर ताम्र स्रुव से संतापानयन का विधान प्राप्त होता है ।

हृद्रोग एवं अपस्मारोपचार :- कौ०गृ०सू०[2] के पद्धतिकार आचार्य केशव ने इस रोग का उल्लेख किया है । इसमें "अनुसूर्यमिति"[3] सूक्त से रोहित गौ के लोम मिश्रित कणि को गौ के दूध में देकर संपातित एवं अभिमन्त्रित करके रोगी को बाँधकर उसे दूध पिलाना चाहिए । तदनुउत्तर तन्त्र करना चाहिए । जहाँ कहीं भी गोपी-तिलकादि पक्षियों का बोलता हुआ देखे वहीं अभिमन्त्रित करके वृषभ के वक्ष स्थल के लोम से सुवर्ण मणि को वेष्टित करके सम्पातित एवं अभिमन्त्रित कर रोगी को बाँधना चाहिए ।

अपस्मारोपचार[4] [मृगी रोग] में रोगी को हरिद्रोह भक्षणार्थ देकर उसके उच्छिष्टोनुचिक्ष्ट को एकत्र करके उसके सिर से पैर तक उद्वर्तन करके व्याधित को चारपाई पर बैठाकर उसके नीचे शुक एवं गोपीतिलक इन पक्षियों को बायीं जाँघ में हरितसूक्त से बाँधे । रोगी को स्नान कराकर मंथ को अभिमन्त्रित कर पिलाना चाहिए ।

कुष्ठ रोगोपचार :- इस रोग के शमन का विधान कौ०गृ०सू० 26·22-24; 38; 28·13 में प्राप्त होता है । इसमें व्याधित स्थल को अर्थात् श्वेत कुष्ठ को गोमय

1· अथर्व० - 6·14·1

2· कौ०गृ०सू०-26·14-16; 30·13;

3· अथर्व० - 1·22·1

4· कौ०गृ०सू०-26·18-19

पिण्ड से खून निकलने तक खुजलाये तथा "नक्त" जाता सुवर्णो जात इति"[1] मन्त्र से भृंगराज, हरिद्रा, इन्द्र वारूणी, नोलिका एवं पुष्पा आदि पाँच द्रव्यों को पीस-कर अभिमन्त्रित करके कुष्ठ पर लेप करें तथा पीत कुष्ठ पर भी इन्ही द्रव्यों को लगाना चाहिए । इसमें मरूत देवता सम्बन्धी वाक्यों या सूक्तों का प्रयोग विकल्प से करना चाहिए । कौ०गृ०सू० 26·37 के अनुसार पद्धतिकार आचार्य केशव ने रोगी "वरणो वारयाता"[2] सूक्त से वरण वृक्षमणि को बाधने का निर्देश किया गया है । दूसरे विधान के अनुसार" यो गिरिष्वजायत"[3] "अश्वत्थो देवसदने"[4] "गर्भो[5]असीति"[6] ऋचाओं से नवनीति से व्याधित के शरीर में लेप करना चाहिए ।

उद्वेगोपचार :- इसका उपचार कौ०गृ०सू० 26·26-28 में वर्णित है । इसके अनुसार "उपप्रागात"[7] ऋचा को पढ़कर श्वेतपुष्प, वीरिण तथा चार इषीका को लेकर उसको मणि के आकार में बनाकर दोनों ओर से जलाकर बाँधना चाहिए । तीन स्थानों पर विदग्धकाण्ड मणि को बांधना चाहिए । यह कर्म "निश्चुल्मुके संकर्षति"[8] इति" के अनुसार रात में करें तथा प्रातः स्वस्त्ययन करे । इसके अनुसार बाल, युवा वृद्ध एवं स्त्री इत्यादि में जब अचानक उद्वेग आ जाए तब यह विधान किया जाता है।

1· अथर्व० - 1·33·1
2· " - 6·85·1
3· " - 5·4·1
4· " - 5·4·3-4
5· " - 5·25·7;9
6· " - 1·28·1
7· द०कौ०गृ०सू० - 25·35

अक्षिरोगोपचार :- इसका वर्णन कौ०गृ०सू० 30·1-6; में किया गया है । इसके अनुसार "अम्बयो इति"[1] मन्त्र से सर्षपकाण्ड मणि को सम्पातित तथा अभिमंत्रित करके रोगी को बाँधे तथा सर्षप तेल से सर्षपकाण्डों को अभ्यजित करके बाँधना चाहिए। तेल मिश्रित सर्षप के शाक को व्याधित व्यक्ति को खिलावे । चार शाक फलों को व्याधित को देकर तथा मूलक्षीर को मुख से प्राशन,कर तथा तेल अभिमन्त्रित करके व्याधित के आँखों में लगाना तथा खिलाना चाहिए ।

गण्डमालोपचार :- इसका उल्लेख कौ०गृ०सू० के कई स्थानों में प्राप्त होता है । इसके अनुसार "पंचचया"[2] सूक्त से 50 से अधि पर सुपर्णा को अग्नि पर जलाकर पर्ण रस को काष्ठ से ग्रहण करके गण्डमाला पर लगाना चाहिए ।शंख, श्वजाम्बील, उदर रक्षिका [जलूका] इत्यादि से गण्डमाला का छेदन करे । शंख को रगड़कर तथा अभिमन्त्रित करके गण्डमाला पर लगावे । यह लेप "अपचित आसुस्त इति"[3] मन्त्र से करना चाहिए । जलों को तथा गृहगोपिका को अभिमन्त्रित करके गण्डमाला में छेद करने के लिए सैन्धव नमक पीसकर छोड़ देना चाहिए । गोमूत्र से अभिमन्त्रित करके गण्डमाला का मर्दन कर प्रच्छालन करे । तदनु तृणरजफेन लगावे । यह गण्ड तथा गण्ड-स्फोटिका का उपचार है ।

शूलोपचार :- हृदय, उदर, कांग अथवा सर्वांग में शूल उत्पन्न होने पर कौ०गृ०सू०[4] के अनुसार "याते रुद्र इति"[5] शूलमणि को सम्पातित एवं अभिमन्त्रित करके व्याधित

1· अथर्व० - 6·16·1
2· कौ०गृ०सू०- 30·14; 31·16-17; 20; 32·8-10·
3· अथर्व० 6·25·1
4· " 6·83·1:7·76·1
5· कौ०गृ०सू० 31·7

व्यक्ति को बाँधना चाहिए ।

केश सम्बन्धी उपचार :- इसमें केश वृद्धि दृढ़ीकरण एवं केश जनन को लक्षित कर उड़द-तिल आदि कृष्ण अन्न को व्यक्ति को खिलाकर काला वस्त्र पहनाना चाहिए। इसमें जीवन्ती फल, काचोमाचीफल, एवं भृंगराज को बाँधने का विधान तथा काची माची एवं भृंगराज के साथ जल मिलाकर ब्रह्ममुहूर्त में जल सिंचन का विधान किया गया है । इससे बाल स्वस्थ एवं काले होकर बढ़ने लगते हैं । कौशिक गृह्य[1] सूत्र इसका विस्तार से विवरण प्रस्तुत करता है ।

राजयक्ष्मोपचार :- यह एक प्रमुख रोग है । इसका वर्णन कौ0गृ0सू0 -26/36;27/27-28,28/13 एवं 32/11-13 में प्राप्त होता है इसके अनुसार "वरणो वारयाता"[2] मंत्र से यक्ष्मानुगृहीत व्यक्ति को वरणवृक्षमणि बाँधे । "यो गिरिष्वजायत"[3] "अश्वत्थो-देवसदन"[4] तथा "गर्भोडसीअति"[5] इत्यादि मन्त्रों से कृष्ठापिष्ठनीति मिश्र (कुष्ट नामक लकड़ी के चूर्ण को नवनीति में मिलाकर) को अभिमन्त्रित करके शरीर में लगाने का विधान प्राप्त होता है ।

क्षेत्रीय व्याधि उपचार :- गृह्यसूत्रों में कौ0 गृ0[6] ही इन सभी उपचारों का विस्तार से वर्णन करता है। क्षेत्रीय रोग के अनन्तर, कुष्ठ,क्षय,ग्रहणीदोष इत्यादि

1. कौ0गृ0 - 31/28
2. अथर्व - 6/85/1
3. " - 5/4/1
4. " - 5/4/3-2
5. " - 5/25/7-9
6. कौ0गृ0-26/41-43; 27/1-4,7

को रखा गया है । अथवा पैतृक रोग को क्षेत्रीय रोग कहा गया है । "उदगातातिति"[1] ऋचा से ऐसे रोगी को आप्लावित करना चाहिए । "वृभो इति"[2] मंत्र से अर्जुन वृक्ष की लकड़ी, यव की भूसी, तिलपिंजिका,- इन तीनों को एकत्र करके व्याधित को बाँधे । आकृति लोष्ठ को चूर्ण करके जीवित पशु के चर्म में रखकर बाँधना चाहिए। गर्त में शालातृणों को फेंककर उसमें व्याधित को बैठाकर उसी जल से आचमन एवं अवसेचन कराये ।

<u>कृमि उपचार :-</u> कृमि एक विशेष प्रकार के कीड़े होते हैं । पद्धतिकार आचार्य केशव ने इनको गोकृमि, उदर कृमि, तथा सामान्य कृमियों के वर्गों में विभाजित किया है ।[3] कृमि पीड़ित व्यक्ति के लिए कौ0गृ0कं0 26/14-26, के अनुसार "इन्द्रस्य या महीति"[4] सूक्त से अलाण्डव क्रिमि के नाश के लिए आज्यमिश्रित कृष्ण चणक का हवन करे । बालकृमियों को ग्रहण करके काले बाण में परिवेष्ठित करके भेदन करे तथा अग्नि पर तपावे ।

आचार्य केशव गोकृमि के नाश के लिये "उद्यन्नादित्य इति"[5] मंत्र से सूर्य के उदित होने पर कर्ता गोस्वामी से गो कहने के लिए तथा सूक्त की समाप्ति पर "ते हता: क्रिमय:" कहे । गायों को प्रांगमुखी करके उनके सामने दर्भ फेंके । "ओते म इति"[6] मंत्र से करीरमूल को संपातित एवं अभिमंत्रित करके कृमिपीड़ित व्यक्ति को

---

1. अथर्व0 - 2/8/1
2. " - 2/8/3
3. कौ0गृ0-26/14-26,29/20-26 पर उद्धृत आचार्य केशव की टीका पृष्ठ 328-320.
4. अथर्व0 - 2/31/1
5. " - 2/32/1
6. " - 5/23/1 द्र0 कौ0गृ0-29/20-26

बाँधे ।

अमतिगृहीत पुरुषोपचार :- [पागलपन] इसके अन्तर्गत ऐसे लोगों को व्याधित समझा गया है जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई हो, अज्ञान से गृहीत होने अथवा द्यूत-क्रीडा आदि में आसक्त होवे । कौ०गृ०सू० 28·12 में इसका विस्तृत विधान प्राप्त होता है । इसके अनुसार अमतिगृहीत व्यक्ति को -"

"उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्न सुरात्मा तन्व ।स्तत्सुमद्गुः ।
उत वा शक्रो रत्नं दधात्यूर्जया वा यत्सचते हविर्दा : ।।" [1]

मन्त्र से मन्थ को अभिमन्त्रित करके खाने के लिए देना चाहिए ।

सर्पभयोपचार :- इस विधान को तभी करणीय कहा गया है जब सर्प के रहने का भय हो । कौ०गृ०सू० 32·22-25 के अनुसार जिस घर में सर्प का भय उपस्थित हो जाय वहाँ वस्त्र में पैद्व [सुनहले रंग का] को बाँधकर उस घर में स्थापित करना चाहिए । "अंगादंगादिति"[2] मन्त्र से मार्जन करना चाहिए तथा "आरे अभूद् इति"[3] मन्त्र से उल्मुक को लकाकर रस अभिमन्त्रित करके उससे विषव्रण को देखकर उसके सम्मुख फेंक देना चाहिए । सर्पाभाव में काटे हुए स्थान में अथवा रहने के स्थान में फेंक देना चाहिए ।

स्त्री प्रसव एवं सूतिकारोगोपचार:- गृह्यसूत्रों में अनेकों स्थानों पर इसकी चर्चा की गई है परन्तु कौ०गृ०सू०[4] इसका सांगोपांग विधान प्रस्तुत करता है । इसके

---

1. अथर्व - 5·1·7
2. " - 10·4·25
3. " - 10·4·26
4. कौ०गृ०सू० 28·15-16

अनुसार सूतिका रोग एवं अनिष्ठ में स्त्री को भात खाने को देवे परन्तु इसके पूर्व उसे कुछ पग चलने के लिए कहना चाहिए । इसके बाद मन्थ के आचमन तथा आदित्योपस्थान करना चाहिए ।

जंभगृहीतोपचार :- इसका वर्णन कौ0गृ0सू032·1-2 में किया गया है इसके अनुसार "यस्ते स्तन"[1] मन्त्र से माता के स्तन को अभिमन्त्रित करके शिशु को पिलाना चाहिए। तदनु प्रियांगु, तण्डुल का अभ्यातानान्त करके बच्चे को पिलाना चाहिए ।

शस्त्राभिघातजन्य रुधिरोपचार :- कौ0गृ0सू0 28·5-6 के अनुसार व्याधित व्यक्ति के व्याधिदेश पर "रोहिणि असि"[2] सूक्त से लाक्षोदक को गर्म एवं अभिमन्त्रित करके अवसिंचन करना चाहिए । यह कर्म उषाकाल में करना चाहिए ।[3] व्याधित को घृत एवं क्षीर अभिमन्त्रित कर पिलाना एवं लगाना चाहिए । यह उपचार अस्थिभंग तथा शस्त्राभिघात में भी करणीय है ।

रुधिर प्रवाह एवं स्त्रीरजस्रावोपचार :- यह विधि स्त्री के रज के प्रवर्तन एवं रुधिर प्रवाह में कहीं गई है । कौ0गृ0सू0 26·10-15 के अनुसार पांच गांठ वाले वेणुदण्ड को रुधिर प्रवाहित होने वाले स्थान पर रखकर "अमूर्या इति" सूक्त पढ़ते हुए मार्ग की धूलि लेकर रुधिर से मुक्त व्रण पर बिखेरे तथा शुष्क केदार मृत्तिका को बांधे एवं अभिमंत्रित करके रोगी को पिलावे इसके अतिरिक्त चार दवाग्रों के साथ दधि दलल पिलाना चाहिए ।

1· अथर्व0 7·10·1

2· " 4·12·1

3· द्र0कौ0गृ0सू0, दारिलभाष्य, पृ0 93

4· अथर्व0 7·53·1

शल्य चिकित्सा :- वैदिक युग में अश्विनी कुमार देवों के भिषक[1] माने जाते थे। ये अन्धों एवं लंगड़ों को भी ठीक करते थे। उन्होंने दासों द्वारा काटे गये सिर वाले दीर्घतमा को जीवन दान दिया और दौड़ में टूटी टांग वाली विश्पला घोड़ी की टांग लोहे की बनाई थी।[2] इसी प्रकार ऋभु द्वारा क्षत्-विक्षत श्यावाश्व को जिलाया।[3] इनका सबसे प्रशस्य कार्य मधु विद्या प्राप्त्यर्थ दध्यङ् ऋषि का सिर काटकर अश्वसिर से विद्या ग्रहण कर पुनः ऋषि के सिर का प्रत्यारोपण है।[4] च्यवन ऋषि के कायाकल्प की कथा तो सर्वविदित ही है।[5] इसी प्रकार इन्होंने ऋभु के रथ के हिस्सों को भी जोड़ा।[6] अन्यत्र सुख प्रसूति के विषय में "मैं तेरे मूत्रद्वार का भेदन करता हूँ तथा योनि को विस्तृत करता हूँ एवं योनिमार्ग में स्थित दो नाड़ियों को पृथक करता हूँ" - "वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं गवीनिके।"[7] इन सबसे शल्य चिकित्सा पर विस्तृत प्रभाव पड़ता है।

मंत्रसिद्ध मणियों द्वारा चिकित्सा :- वैदिक कालीन लोगों का विश्वास था कि वे रोग जो साधारण औषधियों से नहीं दूर किये जा सकते थे उन्हें मन्त्र सिद्ध मणियों के बांधने से ठीक किया जाता था। "मणि" एक प्रकार के रक्षा-करण्ड को कहते हैं। संक्षेप में इनका विवरण इस प्रकार है - पर्णवृक्ष (पलाश) की मणि बांधने से विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। सुकृत्यमपि यातु विद्या(कृत्या)

---

1. अथर्व0 7.53.1
2. ऋ0 1.11.7-15
3. ऋ0 1.117.24
4. ऋ0
5. ऋ0
6. अथर्व0 4.12.5
7. अथर्व0 4.12.7

को नष्ट करने वाली और उत्तम औषधि है ।[1]

शतवार [शतावर] मणि सैकड़ों पुत्रों को उत्पन्न कराने वाली और यक्ष्मा तथा चर्मरोगों को नष्ट करती है -

"शतधारो अग्निनाधक्ष्मान्‌ध्वंसि तेजसा ।
आरोहन्वर्चसा सह मणि र्दुणामचतान: ।।[2]

अस्तृतमणि यातुधानों [अभिचार को] से रक्षा के लिए बाँधी जाती थी- "मात्वा दभन्पणयो यातुधाना:"[3] अर्कमणि पौरुष प्रदान करती है ।[4] परिहस्तमणि पुमान् संतति की रक्षा के लिए बाँधी जाती थी जिससे शिशु स्त्री में न बदल जाय-

"परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे ।
मर्यादे पुत्रभाधेहि तं त्वमा गमयामहे ।।"[5]

औदुम्बर मणि पशु, जन एवं धन को प्राप्त कराने वाली मानी जाती है -

"औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ।।"[6]

जडिङमणि सैकड़ों विरोधी कृत्यों और विष्कन्धा तथा बलास आदि रोगों को नष्ट करती है ।[7] इसी प्रकार दशवृक्षमणि पैशाचों एवं ग्राही रोगों का नाशक

---

1. अथर्व0 1.11.5
2. " 18.5.1; 8.5:2.11
3. अथर्व0 19.36.1;4.
4. " 19.46.2
5. " 6.62.
6. " 6.81.1
7. " 19.31.1

है । इस दश औषधियों को ब्राह्मणों ने खोजा था ।[1] आज भी शंखों और सीपियों को मालायें रक्षा के रूप में पहनी जाती हैं । इन पुष्टि दायक मणियों से भेषज शास्त्र पर गहरना प्रभाव पड़ता है । इसके साथ ही तत्कालीन लोगों के जीवन का विकासशील स्वरूप उपस्थित होता है ।

मन्त्रों द्वारा चिकित्सा :- शरीर के रोग, कीटाणुओं को मंत्र चिकित्सा से भी दूर करने का विधान प्राप्त होता है । आंतों में सिर में, पसलियों में जहाँ कहीं भी कीड़े हैं, उन्हें हम इस मन्त्र द्वारा दूर करते हैं -

"अन्वांत्र्यं शीर्षण्यमथो पार्ष्टेयं क्रिमीन ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन्ववसा जम्भयामसि ।।"[2]

इस प्रकार अन्य कृत्यों से उत्पन्न रोगों को भी झाड़-फूंक से दूर किया जाता था । सर्पविष आदि को दूर करने के लिए अभिचार किया जाता था ।[3] इस प्रकार भिषक् लोग विभिन्न प्रकार के रोगों को मन्त्रों द्वारा दूर करते थे ।

औषधियों द्वारा चिकित्सा :- बहुत से रोग बिना किसी चीड़-फाड़ के भी औषधियों द्वारा ठीक हो जाया करते थे । वैदिक युगीन लोगों का विश्वास था कि मनुष्य के शरीर में जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे प्रकृति के प्रकोप, पिशाच, गन्धर्व, दानव तथा आभिचारकों के प्रयोग से उत्पन्न होते हैं । ये रोग कई प्रकार के होते थे -

---

1. अथर्व0 2·9·1-4·
2. " 2·31·4
3. " 4-6·7:5-13: 6·12: 6·56; 6·100·

औषधियों द्वारा चिकित्सा -

बहुत से रोग बिना किसी चीड़-फाड़ के भी औषधियों द्वारा ठीक हो जाया करते थे। वैदिक युगीन लोगों का विश्वास था कि मनुष्य के शरीर में जो रोग उत्पन्न होते है वे प्रकृति के प्रकोप, पिशाच, गन्धर्व, दानव तथा अभिचारकों के प्रयोग से उत्पन्न होते है। ये रोग कई प्रकार के होते थे -

§1§ बलास -

इस रोग के अस्थियाँ एवं जोड़ अलग हो जाते है -

"अस्थिस्रंसं परूस्रं समास्थितं हृदयामयम्।

बलासं सर्व नाशय।"[1]

इस मन्त्र के प्रयोग से अस्थियों का दर्द ठीक हो जाता है। इस व्याधि के उपचार में त्रिककुद, आम्जस और जङ्गिड" पौधे का उल्लेख मिलता है " त्रिककुद आञ्जन" जङ्गिड "[3]

§2§ किलास -

यह श्वेत कुष्ठ नामक रोग का नाम है। इसके परिणाम स्वरूप शरीर की त्वचा पर भूरे, सफेद या श्वेत आदि चित्र-विचित्र धब्बे पड़ जाते है।[4] यह चर्मरोग हड्डियों आदि शरीर के विकार तथा अभिचार के कारण उत्पन्न होता था[5]

1- अथर्व0 6·14·1

2- " 4·9

3- " 19·34·10

4- सेक्रेट बुक्स आफ द ईस्ट, भाग 42, पृ0503-4, अथर्ववेद एण्ड गोपथ ब्राहमण पृ0 59

5- अथर्व0 - 1·23·4

इस रोग की दो औषधियाँ है - असिक्नी और आसुरी[1]। इसी प्रकार आसुरी औषधि किलास रोग नष्ट कर त्वचा को सुन्दर बनाती है ।[2]

§3§ विष्कन्ध -

यह गठिया अथवा वात रोग है क्योंकि यह कन्धों को अलग-अलग खींच देता है ।[3] इसके उपरार्थ कर्शफ और विशफ पौधों का उल्लेख मिलता है - "कर्शफस्य विशफस्य - - - -यथा भिषक् देवास्तथापि कृणुता पुनः ।[4] इसके अतिरिक्त जंगिड पौधा भी इसके उपचारार्थ प्रयुक्त होता है ।

§4§ हरिमा -

यह हृद्रोग कामल की शान्ति के लिए प्रयुक्त है । यह व्याधि पीलेपन §पीलिया§ का द्योतक है इसे एक प्रकार से पाण्डुरोग भी कहा जा सकता है । इसका उपचार सूर्य किरणों द्वारा किया जाता है ।[5]

§5§ यक्ष्मा -

यह भयानक रोग है । इसमें शरीर अक्षम हो जा जाती है । अथर्ववेद में इसे राजयक्ष्मा और अज्ञात यक्ष्मा के रूप में चित्रित किया गया है ।[6] यह समस्त आन्तरिक अंगों में व्याप्त होने वाली व्याधि है । इसका उपचार आञ्जन और

---

§1§ अथर्व0 1·23·3
§2§ " 1·24·2
§3§ वैदिक इण्डिया भाग-2· पृ0 352 §हिन्दी अनुवाद § : 1962
§4§ अथर्व· 3·9·1·
§5§ अथर्व0 19·44·2:1·76·3-5
§6§ अथर्व0 3·11·1·

गुग्गुल औषधि द्वारा किया जाता है। गुग्गुल के गंध से यक्ष्मा वैसे ही पलायित हो जाता है । जैसे तीव्रगामी मृग ।[1]

औषधि निर्माण में प्रयुक्त प्रमुख वनस्पतियाँ :-

अजशृंगी नामक वनस्पति विशिष्ट गंध वाली श्वेत रंग की कंटीली सर्वाधिक शक्तिशाली औषधि है ।[2] अपामार्ग[3] वनस्पति का प्रयोग उस कृत्या के लिए किया जाता था जो क्षुधा, तृष्णा और सन्तान को मारने और जुए में हारने के लिए किसी के द्वारा प्रयुक्त हो । इससे क्षेत्रीय रोग, शपथ और कृत्य तथा पैशाची को दूर किया जाता था । आव्यु[4] वनस्पति को सामण ने सर्षप से समीकृत किया है । यह कड़वे रस वाली स्वयं नष्ट होकर दूसरों लाभ पहुँचाती है। इसका पहला नाम अलसाला और अपरनाम शिलाजाला है ।[5] असिक्नि[6] नामक वनस्पति रात में उत्पन्न होती है। यह श्वेत कुष्ठ तथा किलास[7] को भी ठीक करती है। अरून्धाती[8] बहुत ही महत्वपूर्ण वनस्पति है । यह किसी भी प्रकार भी प्रकार की घटना में घायल व्यक्ति का उपचार करती है। यह हड्डियों को बढ़ाने वाली तथा क्षत-विक्षत शरीर को भली-भाँति पुष्ट करने वाली लतिका के समान होती है । जो प्लक्ष, अश्वत्थ, न्यग्रोध और पर्ण जैसे वृक्षों पर चढ़ती है ।[9] अरून्धती को पीसकर उसका रस पीने से मनुष्य रोगमुक्त हो जाता है। जब रूद्र के बाण से आहत पशुओं के बीमार होने पर इसका सेवन किया जाता था ।[10] एक मन्त्र में अरून्धती का प्रयोग दूध देने वाली गाय

- -

1. अथर्व0 9·8·7·; 19·38·2
2. " 4·37·6
3. " 4·18·7
4. " 6·16·1,2,
5. " 6·16·3·
6. " 1·23·1
7. " 1·23
8. " 4·12·1
9. " 5·5·5; 2·5·3
10. " 6·5·3: 6·59·1; 6·59·2; 8·7·6·

और अन्य चतुष्पदों के लिए दूध बढ़ाने के लिए तथा मनुष्यों को यक्ष्मा रोग दूर करने के लिए किया जाता था । यह मधुरस वाली संभवत: आधुनिक आकाशबेल [आकाश बँवरि] है । आसुरी[1] नामक वनस्पति श्वेतकुष्ठ का विनाश कर त्वचा को सुन्दर बनाता है । वैधक शब्द सिंधु में इसे कफ; फुँसियाँ और चमड़ी के रोग का विनाशक है । इस गुणकारी औषधि से शरी को चमड़ी रोग रहित होकर[2] रूपवती हो जाती है । "कुष्ठ"[3] नामक पौधा सोम के साथ विशेषत: पर्वतों और हिमालय के उन उच्च शिखरों पर उगता था जहाँ पर जहाँ से यह पूर्व में मनुष्यों के पास लाया जाता था ।यह सिरदर्द, नेत्र रोगों, शारीरिक व्याधियों और विशेषकर ज्वर को शान्त करने के लिए किया जाता था । यह तक्मन और यक्ष्मा को भी दूर करता था । इसी प्रकार गुग्गल की गंध यक्षमा को दूर करता था । इसी प्रकार गुग्गुल की गंध यक्ष्मा और श्राप का नाश करने वाली बतायी गयी है ।"जङ्गिड" नामक पौधा तक्मन, बलास, आशरी, विशरीक, पृष्ट्यामय[4] वातज पीडा और ज्वर विष्कन्ध शंस्कन्ध[5] और जम्भ इत्यादि रोगों के लिए प्रयुक्त होता था । "दर्भ"[6] बहुत ही शक्तिदायक एवं हृष्ट-पुष्ट करने वाला पौधा है । इसमें प्रचुर जड़े, सहस्रों पत्तियाँ एवं अनेकों गाँठ होती है । यह क्रोध को शान्त करने तथा रक्षा हेतु प्रयोग किया जाता था । "पिप्पली"[7] का प्रयोग घावों को भरने के लिए किया जाता था ।

---

1. अथर्व0 1.24.2
2. " 1.24.2
3. " 5.4.6;122.
4. " 19.34.10
5. " 19.34.5
6. " 19.30.1
7. " 6.109.1; 3

यह तिरष्कृत और वात रोगों कीऔषधि है । "वर्णावती"[1] औषधि अमृततुल्य विष का निवारण करने वाली तथा यक्ष्मा[2] को दूर करने वाली है । "सोम"[3] वनस्पतियों का राजा है । पुरोहित लोग इन्द्र को सोम देते थे सोमपान से विष का प्रभाव नष्ट हो जाता था । इसे ज्वर[4] को शान्त करने वाला कहा गया है ।

इसी प्रकार अन्य औषधियाँ भी ज्ञात थी जिनका नाम वीरिद्रा[5], सदम्पुष्पा, अर्क[6], शंखपुष्पिकादि हैं ।

<u>ज्योतिर्विज्ञान</u> :- वैदिक काल से ही ज्योति र्विज्ञान अपनी पराकाष्ठा में था । एक स्थल पर हानिकर नक्षत्र में उत्पन्न बच्चे की शान्ति काप्रकरण प्राप्त होता है । नक्षत्र शब्द अथर्ववेद में तारे के आशय में लगभग 20 स्थानों पर प्रयुक्त है ।[7] एक मन्त्र में सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्रों का उल्लेख एक ही साथ हुआ है । नक्षत्रों का राजा चन्द्रमा है । सोम या चन्द्रमा ही नक्षत्रों के केन्द्र बिन्दु है ।[8]

अथर्ववेद में 28 नक्षत्रों की चर्चा की गयी है ।

<u>पौष्टिक कर्मों में शरीर विज्ञान</u> :- वैदिक युग में लोगों को शरीर के अनेकों अंगों का ज्ञान था । इसमें तलवे, एड़ी, घुटने, जंघे, घुटने का जोड़ श्रोणी, उरू,

- -

1. अथर्व0 3·7·1
2. " 6·65·1
3. " 5·14·7
4. " 5·1·1
5. " 11·4·1
6. " 7·68·5
7. द्र0 वैदिक इण्डिया, भाग-1, पृ0 451
8. अथर्व0 14·1·2

ग्रीवा, स्तनौ, कन्धें, पृष्ठि, ललाट, कपाल कीकस आदि प्रमुख हैं । इसी प्रकार अनेकों मन्त्रों से शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों का ज्ञान प्राप्त होता है ।

रसायन विज्ञान :- अथर्ववेद में आयुर्वेद के साथ ही रसायन विज्ञान के विषय में सामग्री प्राप्त होती है । डॉ0 प्रफुल्लचन्द्र राय के अनुसार अथर्ववेद के आयुष्मानि सूक्तों से रसायन शास्त्र की उत्पत्ति हुई । इनमें से एक सूक्त में नाना दु:खों से मुक्त के लिए शंख मणि बांधने का विधान किया गया है । एक दूसरे सूक्त में दीर्घायुष्य के लिए हिरण्यमणि धारण करने का प्रसंग है ।[1] तीसरे सूक्त में दानवों को भगाने वाली सीस-मणि का उल्लेख है ।[2] सीसे को वरुण ने मंत्रसिद्ध किया है। सीसे का पक्ष अग्निदेव करते हैं । इस प्रकार अथर्ववेद में रसायन शास्त्र की भावना शंख हिरण्य और शीशे में निहित है ।[3] मधु मिलाकर बनाये गये एक रस विशेष को प्राण का रक्षक बताया गया है ।[4] आव्यु पौधे के रस को कड़वा कहा गया है जिसका प्रयोग आँख के रोग को दूर करने के लिए किया जाता था ;[5] एक मन्त्र में "क्षण" का उल्लेख है । जो अन्न के रस से तैयार किया हुआतरल पदार्थ है जिससे लिष्कन्धा नामक रोग दूर किया जाता था । इस प्रकार अथर्ववेद ही हिन्दू रसायन विज्ञान का प्रमुख स्रोत माना जा सकता है ।

भौतिक विज्ञान :- अथर्ववेद में भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित सामग्री भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है । एक सूक्त में लाक्षा का वर्णन है । इसमें लाक्षा उत्पन्न

---

1. अथर्व 19·26·3
2. " 1·16·2
3. राय पी0सी0 ए0 हिस्ट्री आफ हिन्दू केमेस्ट्री भाग-2 पृष्ठ-6 (भूमिका)
4. अथर्व0 3·13·5·
5. " 6·16·1; द्र0 कौ0गृ0सू0 31·1·

करने का श्रेय शिलाची नामक कीट को दिया गया है शीलाची लाक्षा का पिता है और उसका रंग भूरा है । यह पीपल, खैरा, न्यग्रोध आदि वृक्षों पर चढ़कर लाख उत्पन्न करता है । एक मन्त्र में कहा गया है कि इसके पीने से पुरुष जी उठता है तथा यह रक्षा करने वाली औषधि है । लाक्षा के स्त्री कीड़े के गर्भ का भाग पीला होता है । मन्त्र में उसे हिरण्यवर्ण और सूर्यवर्ण कहा गया है ।[1] वे कीड़े जो रेंगते हैं उन्हें "सरा" कहा गया है । उड़ने वाले सरा को पतत्रिणी कहा गया है ।

---

1. अथर्व0 5.5.6.

पौष्टिक कर्मों में मनोविज्ञान :- वैदिक पौष्टिक कर्मों का मुख्य आधार मानव मनोविज्ञान है । इन कर्मों का प्रधान मानव मन को सन्तुष्ट करना है । रोगोपशमन के ऐसे विधानों जिनमें रोगों का निदान बिना किसी औषधि के बताया गया है अथवा अन्न धन दीर्घायुष्य आदि की प्राप्ति हेतु विहित विधानों में भी मानव मनोविज्ञान का दर्शन किया जा सकता है । राज-कर्म सम्बन्धी पुष्टि कर्मों का भी मुख्य उद्देश्य राजा प्रजा व सेना के उत्साह को बढ़ाना है । इसी प्रकार अज्ञात व्याधि से पीडित व्यक्तियों की बाधा का निवारण मंत्रों के पाठ व रक्षा करण्डों के बांधने से बताया गया है । इसका भी मुख्य आधार मानव मनोविज्ञान ही प्रतीत होता है । ऐसी अनेक व्याधियां है जिनका निवारण पौष्टिक कर्म सम्बन्धी विधानों में बताया गया है । ऐसे रोगों एवं बाधाओं का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है ।

§1§ औषधियों के बिना रोग निवारण :- जिन रोगों का निवारण साधारण औषधियों से नहीं किया जा सकता था उन्हें मन्त्रसिद्ध मणियों के बांधने से ठीक किया जाता था । मणि एक प्रकार के रक्षाकरण्ड को कहते हैं । संहिता[1] में विविध मणियों के पृथक्-2 सूक्त प्राप्त होते हैं । पर्णवृक्ष की मणि बांधने से विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं । "स्रक्त्यमणि" यातुविद्या को नष्ट करने वाली उत्तम औषधि है ।[2] "शतावरमणि" सैकड़ों पुत्रों को उत्पन्न करने की क्षमता एवं यक्ष्मा तथा चर्म रोगों को ठीक करती है । "अस्तृतमणि" यातु धानों से रक्षार्थ बांधी जाती थी । अर्कमणि पौरूष प्रदान करती है । परिहस्तमणि पुमान् संतति की रक्षा

---

1. अथर्व० 3.5.1-8
2. " 18.5.1; 8-5

रक्षा के लिए प्रयुक्त है औदुम्बर मणि पशु, धन, जन की प्राप्ति कराने वाली कही जाती थी ।[1] जङ्गिड मणि सैकड़ों विरोधी कृत्यों और विष्कन्धों आदि को नष्ट करती है ।[2] शंख मणि सब प्रकार के पापों से रक्षा करती है । आज भी शंखों एवं सीपियों की मालायें रक्षा के रूप में पहनी जाती हैं ।

कुछ रोगों का निवारण न औषधियों से न ही रक्षाकरण्डों से ही संभव था, वे रोग मन्त्रों के द्वारा जलाभिमर्षण आदि से दूर किये जाते थे । आंतों, सिर, पसलियों इत्यादि में जहाँ कहीं भी कीड़े हैं उन्हें हम निम्नलिखित मन्त्र से दूर करते हैं --

"अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य1मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि ।।"[3]

इसी प्रकार अन्य कृत्यों से उत्पन्न रोगों को भी झाड़ फूंक से दूर किया जाता था । सर्पविष आदि को दूर करने के लिए अभिचार किया जाता था ।[4] एक सूक्त[5] में विष दूर करने के अनेक उपाय बताये गये हैं, इस प्रकार अथर्ववैदिक भिषक लोग विभिन्न परिचर्याओं द्वारा लोगों को रोगमुक्त किया करते थे ।

प्रेतादि बाधा निवारण :- वैदिक आर्य देवों की अपेक्षा भूत, पिशाच, राक्षसादि दानवी शक्तियों में गहरा विश्वास रखते थे । इन दानवों का स्वरूप बड़ा भयंकर था। इनके बड़े-2 बाल थे तथा ये हाथ में सींग धारण करते थे । ये मनुष्य के कच्चे

- -

1. अथर्व0 19-31.1
2. " 19.24.1-10
3. " 2.31.4
4. " 4.6.7; 5.13; 6.12; 6.56; 6.100.
5. " 7.88

मांस का भक्षण करते, गर्भवती स्त्रियों को कष्ट पहुँचाते तथा गर्भ तक को खा जाते थे।

" य आमं मांसमदन्ति
गर्भान्खादन्ति केशवा: ।।"[1]

ये मायावी थे तथा माया से विभिन्न रूप धारण किया करते थे। परिवार में फूट तथा वैमनस्य का कारण इन्हें समझा जाता था। इनका एक लोक ही अलग था।[2] देवों से इनका बड़ा बैर रहता था। देवगण त्रिषन्धि (वज्र) की सहायता से असुरों का वध करते थे।[3] इनका पाटा और वज्र से भी नाश हो जाता था।[4] कौ०गृ०सू० के अनुसार[5] गर्भ रक्षण के लिए सिनीवाली देवी से प्रार्थना किया गया है।[6] पुंसवन संस्कार में संभावित बाधाओं को दूर करने के लिए स्त्री की कलाई में अभिमन्त्रित रक्षा सूत्र बाँधा जाता था।[7] कौ०गृ०सू० 8·24 के अनुसार सीमन्तोन्नयन संस्कार में राक्षसों, दानवों आदि से गर्भ की रक्षा के लिए किया जाता था। हे स्त्री, तूने जो गर्भ धारण किया है, वह गिरे नहीं, तुम्हारे नीचे पहनने वाले वस्त्र में बंधी हुई यह औषधि गर्भ की रक्षा करे।[8]

कौ०गृ०सू० के चतुर्थ अध्याय के अनुसार भूत, राक्षस, अप्सरस तथा गन्धर्वादि से मुक्ति पाने के लिए इनको सदा के लिए अपने जीवन से दूर करने हेतु विधान

1· अथर्व० 8·6·23
2· " 8·10·22
3· " 11·10·10
4· " 8·6·3
5· " कौ०गृ०सू० 35·5
6· कौ०गृ०सू० 35·11
7· अथर्व० 8·6·20
8· " 5·29·4

प्राप्त होता है - भूत-पिशाच के शमनार्थ कक्कुसों, तुष, बुसु एवं काष्ठ शकलों का हवन करना चाहिए । जिस व्यक्ति को अथवा स्थान में जहाँ भी इसका संदेह हो हवन करे तथा नियत रूप से धूमपान करे । कर्कोटिका का समिदाधान, मुसल-काष्ठ शकलों का हवन तथा खदिर का आधान करना चाहिए । खदिर के शंकुको 7 या 9 की संख्या में "अक्ष्यौ निविध्य हृदि"[1] मन्त्र से अभिमन्त्रित करके अग्नि के पश्चिम में गाड़कर भूमि को बराबर कर देना चाहिए । यह विधान पिशाच के उपद्रव करने पर करना चाहिए । पिशाच गृहीत व्यक्ति के चारों ओर (शयन स्थल एवं घर में) तप्त शर्करा को या पल्य को बिखेर देना चाहिए । अमावस्या के दिन बायें हाथ से एक बार यव लेकर उनको पीसकर अभ्यातानान्त करके शरमयबर्हि को फैलाकर सर्षप का समिदाधान करना विहित है । तदनन्तर व्याधित को सम्पातित करके शण सूत्र से बीहृवामार्जन करे । इस प्रकार यह समझना चाहिए कि राक्षस चला गया है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पौष्टिक कर्म विज्ञान की सुदृढ़ आधार-शिला पर आधारित है । इन पौष्टिक कर्मों में विज्ञान के अनेक तत्व मिलते हैं तो इन पौष्टिक कर्मों के विधान का उद्देश्य ही पूर्णरूपेण वैज्ञानिक परम्परा पर आधारित मिलता है । अतः स्पष्ट है कि पौष्टिक कर्मों का वैज्ञानिक आधार अत्यन्त सुदृढ़ है तथा उनकी वैज्ञानिक परम्परा उत्कृष्ट है ।

---

1. अथर्व0 5.29.4

§षष्ठ-अध्याय§

पौष्टिक कर्मों की आधुनिक युगीन उपादेयता

पृ० सं० -221--240

षष्ठ अध्याय- पौष्टिक कर्मों की आधुनिक युगीन उपादेयता

आगम अथवा तान्त्रिक ग्रन्थों में पौष्टिक कर्म

वैदिक दर्शनों के आप्त प्रमाण के अन्तर्गत श्रुति तथा स्मृति को सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है । ऋग आदि वेदों को श्रुति तथा इतिहास पुराण और धर्म-शास्त्र को स्मृति कहा जाता है । इसके अतिरिक्त बहुत बड़ा साहित्य ऐसा है जो आगम के नाम से व्यवहृत किया जाता है । आगम साहित्य मुख्यत: दो भागों में विभक्त है- ‖1‖ वैदिक ‖2‖ अवैदिक जो आगम विदपरक है या जो वेदों के उप बृंहणरूप माने जाते है वे ही आगम वैदिक है, शेष बौद्धादि आगम अवैदिक है। आगमों को तन्त्र भी कहते है- " आगमापर नामानि तन्त्राणि[1]

आगम मुख्यत 3 है - शैव शाक्त तथा वैष्णव । इनमें क्रमश: शिव शक्ति तथा विष्णु की प्रधानता प्रतिपादित की गयी है । इन आगमों में शैव आगम वेद के ही तुल्य माने जाते है, उनमें तथा वेदों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं माना गया है ।

" वय हि वेदशिवागमयोर्भेद न पश्याम: वेदेपि शिवागम इति व्यवहारो युक्त :।[2]

- -

‖1‖ ता० तं० उ० पृ० ।

‖2‖ ब्रह्ममीमांसा भाष्यम - 2.2.38

इस दृष्टि से शैव तथा शाक्त आगमों में भेद नहीं है । वैष्णव आगमों को वेदों का उपबृंहण माना गया है , इसी कारण उसे धर्म शास्त्र के अन्तर्गत माना गया है ।

" एतेन पञ्चरात्रस्य धर्मशास्त्रत्वं सिद्धम ।[1]

वेदान्त शिक्ते सांख्य , योग, पाशुपत तथा पञ्चरात्रसाहित्य को धर्मशास्त्र का ही भेद माना है ।

" यानि पुनः पुनः सांख्य योग पाशुपत पाञ्चरात्रापि तान्यपि धर्मशास्त्र भे दा एवं ।[2]

अपनी कामना या अभीष्ट की सिद्धि के प्रमुखतम उपाय को साधना कहते है। यह एक क्रियात्मक विज्ञान है। जो साधक को साध्य से मिलाकर उसकी समस्त कामनाओं को परिपूर्ण कर देता है। सर्व को कवित्व एवं ऋषि को ऋषित्व साधना के द्वारा ही प्राप्त होता है । अतः साधना सफलता की कुञ्जी है ।

भारत जैसे साधना प्रधान देश में दैहिक दैविक एवं भौतिकतापों से छुटकारा पाने के लिए सुदूरतम प्राचीन काल से मन्त्र साधना का आश्रय लिया जाता रहा ।

---

§1§ ह्य0 30 व्याख्या पृ0 408

§2§ न्या0 पा0 शब्द ।। पृ0 167

इस साधना के द्वारा न केवल हमारी लौकिक कामनाओं की पूर्ति या लौकिक सिद्धियाँ ही मिलती है, अपितु इस साधना के द्वारा दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति या मुक्ति भी मिलती है। तान्त्रिक सम्प्रदाय के अनुयायियों का विश्वास है कि यह साधना एक हाथ से भुक्ति तथा दूसरे हाथ से मुक्ति प्रदान करती है ।

मन्त्र तन्त्र एवं यन्त्र तात्विक रूप से भिन्न वस्तु नहीं है, अपितु एक ही सत्य के तीन प्रकार है या एक ही शक्ति के तीन रूप है व्यक्ति की शक्ति को उद्दीप्त कर उसमें गुरुतर शक्ति का संचार करने वाला गूढ़ रहस्य मन्त्र कहलाता है। मन्त्र का चित्रात्मक रूप यन्त्र तथा क्रियात्मक रूप तन्त्र है। मन्त्र के इन त्रिविध रूपों का क्रियात्मक विज्ञान मन्त्र साधना कहलाता है। इष्ट सिद्धि या अभीष्ट कामना की पूर्ति इसी क्रियात्मक विज्ञान पर निर्भर रहती है । इसीलिए मन्त्र साधना की छोटी से छोटी प्रक्रिया में जरा सी भी भूल-चूक हो जाने पर मात्र असफलता ही नहीं मिलती बल्कि मन्त्र साधक कभी-कभी दुर्घर्ष दुर्घटना का शिकार भी हो जाता है । इस प्रकार की दुर्घटना या भूल-चुक से बचने के लिए साधक को मन्त्र शास्त्र का आश्रय ग्रहण करना चाहिए । यह शास्त्र उन सत्यों सिद्धान्तों शक्तियों एवं प्रक्रियाओं का ज्ञान है जो मन्त्र साधना एवं मन्त्र सिद्धि के लिए अत्यावश्यक है ।

वेदों में समृद्धि प्राप्त्यर्थ जिन कर्मों को पौष्टिक कर्म कहा जाता है तान्त्रिक ग्रन्थों में ऐसे कर्मों का सामान्य अभिधान साधना है । साधना

शब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। आगम ग्रन्थों के अनुसार वे सभी पदार्थ जो सिद्धि के अनुकूल होते है साधन कहलाते है तथा उनका अवलम्बन या उन पर आचरण करना ही साधना है। संक्षेप में साधक द्वारा साध्य की प्राप्ति हेतु किया जाने वाला प्रयत्न साधन कहलाता है तथा इस साधन के उपयोगी उपकरणों को साधन कहते है । वस्तुत: साधन एवं साधना दोनों आध्यात्मिक शब्द है, इन दोनों के द्वारा साधक दु:खत्रय से मुक्त होकर सुख प्राप्त करता है ।

तान्त्रिक ग्रन्थों के वैदिक पुष्टिकर्मों की ही भाँति शान्ति आदिक षड्कर्मों का व्याख्यान भी किया गया है जिन्हें क्रमश: शान्ति वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण उच्चाटन एवं मारण कहा गया है ।

कर्माणि षड्षा वक्ष्ये सिद्धिदानि प्रयोगत: ।
शान्ति वश्यं स्तभन च द्वेषमुच्चाटमारणे ।।
उक्तानीमानि कर्माणि शान्तीरोगादि नाशनम ।
वश्यं वचन कारित्व स्तम्भों वृत्ति निरोधनम ।।
द्वेषोड प्रीति : प्रीतिमतो रूच्चाट: स्थानश्च्युति ।
मारणं प्राणहरण मिति षट्कर्मलक्षणम ।।[1]

---

[1] मन्त्र महोदधि 25, 1-3

अर्थात रोगादि के नाश को शान्ति कथनानुसार करने को वश्य, वृत्तिनिरोध को स्तम्भन मित्रों में शत्रुता को विद्वेषण, स्थान से हटाने को उच्चाटन तथा प्राणहरण को मारण कहते हैं। षट्कर्मों का सम्पादन करने से पूर्व 19 पदार्थों की यथार्थ जानकारी होनी चाहिए। ये पदार्थ निम्नलिखित है।

" देवता देवतावर्णी ऋतुर्दिग्दवशासनम्
विन्यासा मंडल मुद्राक्षरं भूतोदय समित ।।
मालाग्निलिखिन द्रव्य कुण्ड सुक्सुवलेखनी ।
तद्कर्माणि प्रयुञ्जीत ज्ञात्वैता निदर्शायधम ।।[1]

इन षट्कर्मों को सम्पादित करने में विशिष्ट तिथि तथा वार का विशेष ध्यान दिया जाता है।[2] इसके अतिरिक्त विशिष्ट आसनों मुद्राओं आदि का भी ध्यान देना चाहिए। तान्त्रिक ग्रन्थों में किसी भी मन्त्र का प्रयोग करने से पूर्व उसके प्रयोग की पात्रता प्राप्त करनी पड़ती है इसके लिए इन सद्कर्मों के सम्पादन का उचित ज्ञान होना चाहिए मन्त्र सिद्ध होने पर साधक कामना संतुष्ट तथा साधक स्वस्थव गंभीर हो जाता है। उसमें क्रोध एवं लोभादि का नितान्त अभाव हो जाता है।

---

[1] मन्त्र महोदधि 25.4-5

[2] मन्त्र महोदधि 25.10--15

" मनः प्रसादः संतोषः श्रवणे दुन्दुभिध्वनेः ।।
गीतस्य तालशब्दस्य ग्रान्धर्वाणा सभी क्षणम् ।
स्वतेजस सूर्य साम्येक्षण निद्राक्षुधाजयः ।।
रम्यतारोग्य गाम्भीर्यमभाव क्रोधलोभयो ।
एवमादी निचिन्हानि यदा पश्यति मन्त्रवित ।।
सिद्धि मन्त्रस्य जानीया देवतायाः प्रसन्नताम् ।[1]

विविध देवताओं से सम्बद्ध अनेक काम्य प्रयोगों का विधान तान्त्रिक ग्रन्थों में बताया गया है । अथ पुरश्चरण आदि के द्वारा मन्त्र सिद्ध हो जाने पर काम्य प्रयोगों का संपादन करना चाहिए । वाक्सिद्धि प्रदात्री काली के मन्त्रों का काम्य प्रयोग बताते हुए कहा गया है कि ओदन खाकर आचमन किये बिना एकाग्रचित्त से जो व्यक्ति उच्छिष्ट चाण्डालिनी सुमुखी के मन्त्र

" उच्छिष्ट चाण्डालिनि सुमुखिदेवि महापिशाचिनि ह्रीं ठःठःठः ।।[2]

का उच्छिष्ट होकर 10,000 [दश हजार] जप करता है वह समस्त सम्पत्ति प्राप्त करता है ।

उच्छिष्ट द्रव्य में दही मिलाकर जो व्यक्ति उससे एक लाख आहुतियाँ देता है राजा एवं मन्त्री आदि तत्काल उसके वश में हो जाते हैं । मार्जार के

---

[1] मन्त्र महोदधि 25.96-100

[2] द्र० " " पृ० 94

के मांस से होम करने से व्यक्ति शास्त्रों में पारंगत हो जाता है ।
"छाग मांस के होम से धनवृद्धि तथा खीर के होम से विद्या मिलती है।
रजस्वला के वस्त्र के टुकड़ों को मधु एवं क्षीर के साथ मिलाकर होम करने
वाला व्यक्ति लोक को वश में कर लेता है । मधु, घृत एवं धान के हवन
से श्रीवृद्धि होती है । तत्काल मारे गये मार्जार के मांस में मधु घृत एवं
अन्त्यज के केश मिलाकर उससे होम करने से स्त्री आकर्षित होती है। मधु
सहित शशक -मांस के होम से भी उक्त फल मिलता है ।

धतूरे की लकड़ी से प्रज्वलित चिता की अग्नि में कोकिल
एवं काक के पंखों से हवन करने से व्यक्ति तुरन्त शत्रुओं को वश में कर लेता
है । काक एवं उलूक के पंखों के हवन से शत्रुओं में विद्वेष फैलता है। उलूक
के पंखों के होम से गर्भिणियों का गर्भपात हो जाता है ।घी मिलाकर
बेल पत्रों की प्रतिदिन 1000 (एक हजार) आहुतियाँ देने पर एक मास
में बन्ध्या स्त्री भी पुत्र प्राप्त कर लेती है। मधु सहित लाल बेर के पुष्पों
के हवन से भाग्यहीना स्त्री भी सौभाग्यवती हो जाती है ।

निर्जन मकान वन , श्मशान एवं चौराहे पर देवी को
बलि समर्पित कर उच्छिष्ट होकर उक्त मन्त्र का जाप करने से सुमुखी
देवी तुरन्त प्रत्यक्ष होकर साधक पर कृपा करती है ।[1]

---

(1) द्र0 मन्त्र महोदधि 3.61-73

तारा देवी से संबद्ध एक अन्य काम्य प्रयोग में बताया गया है कि नवजात शिशु की जीह्वा पर तीन दिन के भीतर शहद एवं घी से सोने की या श्वेत दुर्वा की शलाका से " ॐ ह्री त्री हु फट् ।।[1] तारा मन्त्र लिखना चाहिए ऐसा करने से आठ वर्ष व्यतीत होने पर वह बालक निश्चित रूप से महाकवि बन जाता है। वह दूसरे विद्वानों से अपराजित तथा राजाओं से पूज्य हो जाता है ।

ग्रहण के समय सरोवर में तैरते हुए काष्ठ को लाकर उसकी लेखनी से कमल पत्र पर तैल मधु एवं मदिरा से तारा मन्त्र लेकर मात्रिका वर्णों से वेष्टित कर समचतुरस्त्र एवं मेखला वाले कुण्ड में उसे गाड़कर अग्नि स्थापन कर तारा मन्त्र से गो-दुग्ध मिश्रित रक्त कमलों से एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिए । होम के बाद विविध अन्न एवं मांस से बलि मन्त्रों से विधिवत बलि देना चाहिए फिर निशीथ में भी बलि मन्त्रों से बलि देने पर व्यक्ति पण्डितों से अपराजित एवं महाकवि बन जाता है । उसमें सरस्वती एवं लक्ष्मी निवास करती है तथा वह जनता को प्रसन्न करने की क्षमता प्राप्त करता है ।

तारा मन्त्र का सौ बार जप करके जो व्यक्ति गोरोचन का तिलक लगा कर जिसे देखता है वह तत्काल उसका दास बन जाता है । मंगलवार की रात्रि में श्मशान से अंगार लाकर काले कपड़े में लपेट कर लाल धागे में बाँध कर तारा मन्त्र का 100 बार जप कर शत्रु के घर में फेंक देने से एक सप्ताह में ही उसका परिवार सहित उच्चाटन हो जाता है ।[2]

---

‡1‡ द्र0 मन्त्र महोदधि पृ0 101

‡2‡ द्र0 मन्त्र महोदधि 4/104-116

रविवार की रात्रि में पुरूष की हड्डी पर सैन्धव एवं हल्दी से तारा मन्त्र लिखकर उसे 1000 मन्त्रों से अभिमन्त्रित करना चाहिए । उसे शत्रु के घर में फैंक देने से वह पदच्युत हो जाता है , खेत में फैंक देने से वहाँ फसल नहीं उगती ।

षट्कोण अष्टदल एवं भूपुर वाला यन्त्र भोजपत्र पर लाक्षारस से लिखना चाहिए । केशरों में स्वर तथा अष्टदेलों में "क" वर्ग आदि आठ वर्ग लिखकर भूपुर से वेष्टित करना चाहिए । इस यन्त्र को पीले कपड़े में लपेट कर पीले धागों से बाँधना चाहिए । यह यन्त्र बच्चों के गले में बाँधने से भूत प्रेतादि के भय से रक्षा करता है स्त्रियों को बायें हाथ में धारण करने से पुत्र एवं सौभाग्य देता है । पुरूषों में दाहिनी भुजा में धारण करने से धन जिज्ञासुओं को ज्ञान तथा राजा को विजय देता है ।[1]

इसी प्रकार महाविद्या के मन्त्रों के काम्य प्रयोग [2] भी बताये गये है जिनसे विविधसिद्धियाँ प्रभूत धन धान्य भूति कीर्ति आदि प्राप्त होती है ।

---

§1§ द्र० मन्त्र महोदधि 4/117-124

§2§ द्र० मन्त्र महोदधि 5/83-95

आधुनिक युग में पौष्टिक कर्म

पौष्टिक कर्मों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से सत श्रद्धा से अबाध गति से चली आ रही है । वैदिक युग से प्रारम्भ होकर सूत्र ग्रन्थों में यह परम्परा पराकाष्ठा को प्राप्त हुई है । किन्तु तदनन्तर आगमिक ग्रन्थों में यह परम्परा अपने स्वरूप में कुछ अन्तर धारण करते हुए चरमोन्नति प्राप्त परिलक्षित होती है । आगम ग्रन्थों में पौष्टिक कर्मों का प्रतिपादन अत्यन्त स्पष्ट रूप से और पूर्ण आत्मविश्वास के साथ किया गया है । आगमिक ग्रन्थों के पुष्टिकर्मों के आधार पर यदि यह कहा जाय कि आगमिक ग्रन्थों का चरमोद्देश्य मानव के भौतिक समृद्धि और विकास हेतु पौष्टिक कर्मों का प्रतिपादन ही है तो कोई अत्युक्ति न होगी ।आगमिक ग्रन्थों में पार लौकिक सिद्धि की प्राप्ति की अपेक्षा भौतिक सिद्धि को प्राधान्य दिया गया है । प्रत्येक देवी देवता हेतु अलग-अलग काम्य कर्मों का निरूपण करते हुए उन्हें समग्रसिद्धि प्रदान करने वाला बताया गया है । इसके अतिरिक्त एक और अन्तर देखने को मिलता है वह यह है कि आगमिक ग्रन्थों में देव विशेष को महिमा कर्म विशेष के प्रतिपादन और फल विशेष की प्राप्ति हेतु रूढ़ हो गई है । उदाहरणार्थ यदि सरस्वती विद्या प्रदात्री है तो लक्ष्मी धन दात्री है तथा इसी प्रकार अन्य देवी देवता भी अलग-अलग विशिष्ट सिद्धियाँ प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध है ।

इसके अतिरिक्त वैदिक युग की अपेक्षा तान्त्रिक युग में देवताओं की अपेक्षा देवियों के माहात्म्य में श्री वृद्धि हुई है। देवियाँ शक्ति की प्रतीक है । देव इन्ही देवियों को प्रसन्न करके शक्ति प्राप्त करते है । प्रत्येक देवता किसी न किसी देवी से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है । ये देवियाँ न केवल

मानव को सुख समृद्धि प्रदान करती है उसके हितों का चिन्तन करती है तथा साधक द्वारा पात्रता प्राप्त कर लेने पर उसकी सर्वकामनाओं की पूर्ति करती है प्रत्युत देवताओं की भी आवश्यकता पड़ने पर रक्षा व सहायता करती है। शक्ति का माहात्म्य तान्त्रिक ग्रन्थों में इतना अधिक है कि देवता भी शक्ति के अभाव में शून्य से हो जाते है। एक तान्त्रिक परिभाषा के अनुसार शक्ति का प्रतीक है[5]।

पौष्टिक कर्मों की आधुनिक युगीन उपादेयता

पौष्टिक कर्म मानव की लौकिक समृद्धि में सहायक होते है। पुष्टि सम्बन्धी भावना का प्रारम्भ वस्तुत: वैदिक युग से हुआ है मानव स्वभावत: सुखेच्छु होता है मानव की सुख प्राप्ति की यह आकांक्षा इसे सदैव उसके उसके सामर्थ्य से अधिक समृद्धि प्राप्त करने हेतु प्रेरित करती रहती है। अत: वह अपनी शक्ति के अतिरिक्त देवों अथवा अन्य दैवी शक्तियों का सहाय्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है तो धार्मिक संरक्षण प्राप्त करना होता है। हमारे धार्मिक ग्रन्थ इस सुख- समृद्धि की प्राप्ति में सहायक ऐसे कर्मों का समय-समय पर प्रतिपादन करते रहे है। अत: वैदिक वाड्मय से चली आ रही पौष्टिक कर्मों की विधान परम्परा में भी अनेक पड़ाव आते रहे है जिनों आगम ग्रन्थ अत्यन्त महत्व पूर्ण है। इन आगम ग्रन्थों में विहित पौष्टिक कर्म वैदिक पौष्टिक कर्मों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट व विशिष्ट है। "इ" [इकार] है। अत: शिव भी शक्ति या इकार के अभाव में " शव - के समान है अर्थात शिव या रूद्र सदृश परम शक्तिशाली वैदिक देवता भी तान्त्रिक ग्रन्थों में देवियों के आगे शून्य सिद्ध कर दिया गया है। यही स्थिति विष्णु की भी है वे भी लक्ष्मी के बिना कुछ भी कर पाने में असमर्थ है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि देवियाँ सर्व शक्ति सम्पन्न तथा सकल सिद्धि प्रदात्री है।

पौष्टिक कर्मों की यह परम्परा आगमिक व तान्त्रिक ग्रन्थों के उपरान्त पौराणिक वाड्मय से होती हुई आधुनिक यूगीन ग्रन्थों में आज भी किसी न किसी रूप में आज भी विद्यमान है। पौष्टिक कर्मों का अन्यतम सम्बन्ध लौकिक

जीवन से है। लोक जीवन में मानव सभी बाधाओं का निराकरण सरलतम रीति से चाहता है, जिसमें पौष्टिक कर्म ही उसको सहायता करते है । इस दृष्टि से शाबरमन्त्र वर्तमान में अधिक व्यापक है । शाबरमन्त्रों के कुछ प्रयोग द्रष्टव्य है --

प्रेत बाधा निवारण हेतु आधुनिक युग में निम्न लिखित शाबर मन्त्र का प्रयोग होता है ।

" ओम् नमो आदेश गुरू को घोर घोर काजी की किताब घोर मुल्ला की बांग घोर रँगर की कुंड घोर धोबी का कुंड घोर पीपल का पान घोर देवकी दीवाल घोर आपकी घोर विखेरता चल परकी घोर बैठता चल वज्र का किवाड़ तोड़ता चल सार का किवाड़ तोड़ता चल कुन कुन का किवाड़ तोड़ता चल सार का किवाड़ तोड़ता चल कुन कुन सो बन्द करता चल भूत को पलीत को देव को दानव को दुष्ट को मुष्ट को वोट को फेंट को मेले को घरेले को उलके के बुलके को हिड़के को भिड़के को ओपरी को चराई को भूतनी को वलीतनी को डँकिनी को स्यारी को भूवारी को खेवारी को कलुवे को मलुवे को उनके मथवाय के ताप को तिजारी को माथा को मथवाय को मैंगरा की पीड़ा को पेट की पीड़ा को सांस को कांस को मरे को मुसाण को कुण कुण- सा मुसाण कचिया मुसाण भुकिया मुसाण कीटिया मुसाण चौड़ी चौपटा का मुसाण नुहय मुसाण इन्हों को बंधकर इन्ही को बंधकर एड़ी की एड़ी बंदकर पीड़ा की पीडी बंधकर जांघ की जाड़ी बंधकर कटिकी कड़ी बंधकर पेट की पीड़ा बंधकर छाती की शूलबंधकर सीरकी सीस बंधकर चोटी की चोटी बंधकर नौनाड़ी बहत्तर कोठा रोम-रोम में घरपिंड में दखलकर

देश बंगाल का मनसाराम से बड़ा आकर मेरा काम सिद्ध न करे तो गुरू उस्ताद से लाजे शब्द सांचा पिंड कांचा पुरो मंत्र ईश्वरी बाचा ।[1]

रविवार के दिन सुगंधित तेल का दीपक जला मदिरा, मास, इत्र, छार, छरीला, भांग सुलफा सामने रख कर इस मंत्र को सात बार पढ़कर किसी एकान्त में उगे पीपल के आगे रख आवे । ऐसा केवल रविवार के दिन संध्या के समय किया जाता है संभव हो तो इस सामग्री के आगे इक्कीस बार यह मंत्र जपे अन्यथा सात बार तो जपना ही चाहिये । इस तरह यह मंत्र सिद्ध हो जाता है इसके बाद मंत्र में वर्णित व्याधि के लिये किसी भी लोहे की चीज से या मोर पंख से सात बार पढ़कर झाड़ देने से आर आराम होता है।

इसी प्रकार दृष्टि दोष निवारणार्थ विहित एक दूसरा प्रयोग दृष्टव्य है " ओम नामो सत्य नाम आदेश गुरू को ओम नमो गुरू को नजर जहाँ पर पीर न जानो बोले छल सो अमृत बानी कहर नजर कहाँ पे आयी यहा की ठौर तुझे कौन बतायी कौन जात तेरो कहाँ ठाम किसकी बहू बेटी कहा तेरो नाम कहाँ ते उड़ी कहाँ को जाकर अब ही बस करतो तेरी माया मेरी बात सुनो चिल्लाय जैसी होय सुनाऊ आपतेलन तमोलन चूड़ी चमारी कायथनी खतरानी कुमारी मेहतरानी राजा की रानी जा को दोष ताही के सिर पड़े जाहर पीर नजर से रक्षा करे मेरी भक्ति गुरू की शक्ति फरो मंत्र ईश्वरी वाचा ।[2]

---

[1] तन्त्र दर्शन पृ० 204-5 गृहीत

[2] तन्त्र दर्शन पृष्ठ 205 से गृहीट

सात शनिवार तक प्रति शनिवार इस मंत्र की एक माला फेरने से मंत्र सिद्ध हो जाता है । फिर किसी भी नजर लगे व्यक्ति को मोर पंख लेकर सात बार झाड़ने से दृष्टि दोष दूर होता है। एक दिन में पूरा आराम न होय तो तीन दिन यह प्रयोग दुहराये ।

वैदिक पौष्टिक कर्मों में पाण्डुरोग दूर करने के विविध उपायों का वर्णन मिलता है । ये सभी कर्म वैदिक मंत्रों पर आधारित है। किन्तु साबर मंत्र में वैदिक प्रयोगों से एकदम भिन्न प्रयोग मिलता है । पाण्डुरोग या पीलिया अत्यंत ही कष्टकारी रोग है । पीलिया से ग्रस्त व्यक्ति दुर्बल व कमजोर हो जाता है । तथा निदान न पाने पर मृत्यु का भी शिकार हो जाता है इस दुःसाध्य रोग को दूर करने वाले इस शाबर मंत्र को जो व्यक्ति सिद्धकर लेता है । वह न केवल अपने इहलोक और परलोक को सुधार लेता है प्रत्युत देश के गौरव में भी श्री वृद्धि करता है वह रोग ग्रस्त मानव कल्याण करके एक महान उपकारकरता है । इसकमंत्र इस प्रकार है । ओम नमो वीधेताल असराल नार सिंहदेव तुणादि पीलिया कूं भिदाती कोरे झोरे पीलिया रहै ने नेक निशान जो कही रहा जाय तो हनुमन्त की आन मेरी भक्ति गुरू की शक्ति फुरो मंत्र ईश्वरी वाचा ।[1]

---

[1] तन्त्र दर्शन पृष्ठ 260 से गृहीत

साधन विधि होली या रामनवमी या दीप मालिका से इस मंत्र का जप प्रारम्भ कर देना चाहिये भगवान बजरंग बली की मूर्ति के आगे इक्कीस हजार जप करने से सिद्ध हो जाता है ॥ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मंत्र सिद्धि के लिये हनुमान की पूजा और प्रार्थना करनी होती है ।

साधना करने के पश्चात किसी पीड़िया ग्रस्त व्यक्ति पर परीक्षण करना चाहिये । इस प्रकार कि रोगी व्यक्ति के सिर पर कांसी की कटोरी में तेल डालकर रख दें और उसे कुशा से हिलाते हुये मंत्र बोलना है। इक्कीस बार मंत्र बोलते हुये ऐसा करने पर यदि कटोरी का तेल पीला हो जाता है तो मंत्र सिद्ध हो गया । यह प्रमाणित हो जाता है । इसी विधि से तीन दिन तक रोगी पर यह प्रयोग करने से रोग मुक्त हो जाता है । संयोगवश मंत्र सिद्ध न हुआ हो तो और पुरश्चरण करने चाहिये ऐसा परोपकार साधन के प्रयोग में किसी भी प्रकार का पारिश्रमिक नहीं लिया जाता । हनुमान जी की मूर्ति पर प्रसाद चढ़ाने या जानवरों को घास पक्षियों को अनाज आदि डालने के पुण्य कर्म बतलाना पर्याप्त रहता है । वैदिक मंत्रों में विषैले जन्तुओं तथा कीटों के विष को दूर करने के लिये तथा इन जन्तुओं से लोगों की रक्षा करने के लिये अथवा इन जन्तुओं के काट लेने से विष ग्रस्त व्यक्ति को स्वस्थ और समृद्ध बनाने के अनेक उपायों का वर्णन प्राप्त होता है । शाबर मंत्र भी ऐसे प्रयोग प्राप्त होता है इसमें ऐसे प्रयोग बताये गये है जिनका उपयोग करने से व्यक्ति विषैले जन्तुओं के साथ रह सक्ता है और सर्प दंश जैसे भयानक विष से बच सक्ता है ।

शावर मंत्र के अनुसार आषाढ़ शुक्ल पंचमी के दिन शिरीष के जड़ को अपनी कमर में बांधता है । और चावल का पानी पीता है। उससे सर्प विष

प्रभावित नहीं करता ।

रविवार पुण्य नक्षत्र के योग में सफेद आक और श्वेत पुनर्नवा की जड़ लाकर सर्प नक्षत्र में स्नान के पश्चात चावल का पानी पीने से वर्ष भर या तो सर्प काटता नहीं और काट ले तो उसे सर्प विष व्यापटा नहीं । सूर्य के मेष राशि में रहते एक साबुत मसूर को दो नीम के पत्तों के साथ खाने से एक वर्ष तक सर्प का भय नहीं रहता । इस प्रयोग के लिये कहा गया है कि उस व्यक्ति का तक्षक सर्प भी क्रुद्ध होकर क्या कर सकता है । गिरगिट के दांत को सफेद धागे में लपेट हाथ में बांधने से सर्प विष नहीं व्यापता ।

उत्तम रहे इन प्रयोगों को करने के लिये " ओम शबरी कीर्तय संजाव संजाव स्वाहा " इस मंत्र के एक हजार जप करके फिर प्रयोग करें इस माला जप करने से सर्पों का मुख स्तंभन हो जाता है ।

इस प्रकार सावर मंत्र संमोहन से भी संबन्ध रखता है पौष्टिक कर्मों में वैदिक युग में संमोहन को वसीकरण कहा गया समोहन का यह शावर मंत्र प्रयोग दृष्टव्य है- " ओम सत्य नाम आदेश गुरू को लौंग लौंग मेरा भाई इन्हीं लौंग ने शक्ति बलाई पहली लौंग राती दूजी लौंग जोबन माता तीजा लौंग अंग मरोड़े चौथी लौंग दोऊ कर जोड़े चारो लौंग जो मेरी खाय के पास से के पास आ जाय गुरू की शक्ति मेरी भक्ति फुरो मंत्र ईश्वरी वाचा ।[1]

---

(1) तन्त्र दर्शन पृष्ठ 208 से साभार गृहीत

इस सावर मंत्र से दुहरा काम होता है। किसी अन पेक्षित व्यक्ति से बने संबंधो को दूर करके अपनी ओर आकर्षित करना अथवा किसी और के लिये प्रयोग कर लेना । पहले खाली स्थान में वह स्त्री जिसके प्रभाव में है उसका नाम लिया जाय । पति के पास है तो पति का, पिता के माता के या भाई के संरक्षण एवं प्रभाव में है तो उसका नाम लिया जायेगा' विधान- मंत्र का सिद्ध करने के लिये शनिवार से प्रयोग प्रारम्भ करना चाहिये । अच्छा रहे जिस पर प्रयोग करना है उनका नाम भी बोल दिया जाय प्रति रात्रि इक्कीस दिन तक इस मंत्र की एक माला जपे इक्कीस दिन तक जपने से मंत्र सिद्ध हो जाता है । फिर चार लौंग लेकर उनको एक सौ आठ बार जपकर अभिमंत्रित करे । ये लौंग अभीष्ट व्यक्ति को किसी भी चीज में किसी के हाथ से या स्वयं खिला दे ।

पौष्टिक कर्मों की आधुनिक युग में प्रासङ्गिकता व महत्व -

पौष्टिक कर्मों की परम्परा वैदिक युग से लेकर आज तक व्याप्त है। पौष्टिक कर्मों की इस दीर्घ कालिक विकास परम्परा में उसके स्वरूप व विधि पर प्रभाव पड़ा है। इनके स्वरूप में कहीं अन्तर आया है तो कहीं नये-नये प्रयोगों का भी प्रादुर्भाव हुआ है। इन पौष्टिक कर्मों के सम्पादन की विधि में सहजता व सरलता आयी है, तो कुछ कर्मों को विस्मृत कर दिया गया है। एतदतिरिच्य अन्धविश्वासों का प्रादुर्भाव भी इन कर्मों की अपनी विशिष्टता है। वर्तमान "ओझाइत" की परम्परा भी इन्ही कर्मों की देन कही जा सकती है आज मानव नाना प्रकार की भूत-प्रतादि शक्तियों में विश्वास करता है। अनेक लाइलाज रोगों को इन शक्तियों की नाराजगी मानता है। विविध प्रकार के टोनों टुटकों पर भी विश्वास करता है तथा इनका निदान पाने के लिए तथा कथित जानकारों के पास जाकर अपनी प्रतिभा का ह्रास करता है।

वर्तमान में वैदिक पौष्टिक कर्मों के ज्ञान से लोग वितर हो गये है। इनके स्थान पर नाना प्रकार के प्रयोग, जिनका कोई भी वैज्ञानिक आधार नही है, केवल लोक विश्वास पर आधारित है, का प्रयोग होने लगा है।

आज पुनः वैदिक पुष्टिकर्मों को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है। आज भी ये पौष्टिक कर्म न केवल मानव मन को शान्ति प्रदान कर सकते है अपितु मानव की विविध समस्याओं का समाधान करके उसे भौतिक दृष्ट्या समृद्ध

बना सकते है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि पौष्टिक कर्म आज भी उतने ही प्रासङ्गिक व महत्वपूर्ण है, जितना कि प्रासङ्गिक व महत्वपूर्ण वैदिक युग में थे । अत: कहा जा सकता है कि पौष्टिक कर्म वादिशिक सार्वकालिक व सार्वभौमिक है ।

[सप्तम-अध्याय]

उप संहार

पृ० सं० 241—248

सप्तम अध्याय

उपसंहार:- पौष्टिक कर्म वैदिक वाडमय की अमूल्य निधि है । इन कर्मों के प्रतिपादन में न केवल तत्युगीन मानवीय अभिलाषाओं को प्रकट किया गया है, अपितु आधुनिक युगीन मानव के लिए भी इन कर्मों की उपयोगिता तद्वत् है ।

यद्यपि समस्त वैदिक संहिताओं की मूल विषय वस्तु देवताओं की स्तुति तथा याग विशेष में देव विशेष की प्रशंसा है । इसके अतिरिक्त अक्ष, मण्डूक आदि अनेक लौकिक सूक्त भी प्राप्त होते है। दार्शनिक सूक्त भी न्यून नहीं है किन्तु पौष्टिक कर्मों पर अथर्व वेद के अतिरिक्त किसी अन्य वेद पर संहिता में विशेष रूप से सूक्त पर मन्त्र नहीं प्रा त होते । फिर भी समस्त संहिताओं ब्राह्मणों तथा सूत्र ग्रन्थों में न्यूनाधिक मात्रा में पुष्टिकर्मों कर विधान प्राप्त होता है । ये पष्टि कर्म मानव की लौकिक सुख-समृद्धि हेतु सरल व दैवी उपाय बतलाते है। अत: समस्याओं से ग्रस्त तथा किंकर्तव्यविमूढ मानव को स्वस्थ व समृद्ध होने का सरलतम उपाय बताकर ये कर्म मानव को जीवन की वास्तविक धारा से जुड़ने को प्रेरित करते है ।

पौष्टिक कर्म अनेक प्रकार के है जिन्हे सामान्यतया 4 भागों में बाँटा जाता है- साम्पदादि पौष्टिक कर्म, कृषि सम्बन्धी पौष्टिक कर्म, पशुओं से सम्बद्ध पौष्टिक कर्म एवं अन्यान्य पौष्टिक एवं पुष्टि दायक काम्य कर्म । इसके अतिरिक्त राज्यकर्म, शान्तिकर्म तथा स्वस्ति कर्मों को भी पौष्टिक कर्मों के अन्तर्गत रखा जा सकता है । इन कर्मों का एक मात्र उद्देश्य सर्वतो भावेन मानव का सुख समृद्धि प्रदान करना है ।

वेदों में पौष्टिक कर्मों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के कर्म भी प्रतिपादित किये गये ह जिनमें आभिचारी कर्म प्रमुख है। इन आभिचारिक कर्मों में रक्षार्थ अभिचार शत्रुनाशन , शत्रुक्षपणी, गोहरण शान्त्यभिचार वशीकरण जासेच्चाटन आदि विशेष उल्लेखनीय है । यद्यपि इन कर्मों का उद्देश्य भी साधक को किसी न किसी रूप में सुख समृद्धि ,संरक्षा आदि प्रदान करना है किन्तु पौष्टिक कर्मों और आभिचारिक कर्मों में अन्तर केवल इतना है कि पौष्टिक कर्म साध्य की प्राप्ति हेतु साधन की पवित्रता पर बल देते है जब कि आभिचारिक कृत्य केवल साध्य को प्रधानता देते है । उसे पाने के लिए किसी भी प्रकार का साधन अपनाया जा सकता है। इस प्रकार पौष्टिक एवं आभिचारिक दोनो कर्मों के उद्देश्य में साम्य होते हुये भी स्वरूपगत वैशिष्ट्य बना हुआ है ।

पौष्टिक कर्मों के वैविध्य में सम्पूर्ण वैदिक भारतीय संस्कृति प्रतिबिम्बित हो उठी है । समाज व्यवस्था में न केवल उच्चवर्गीय समाज के रहन-सहन , खान-पान आदि का विवरण प्राप्त होता है । प्रत्युत तद्युगीन लोक जीवन अत्यधिक प्रस्फुटित हुआ है । इसके अतिरिक्त तद्युगीन लोक विश्वासों व अन्ध विश्वासों का वर्णन प्राप्त होता है इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण वैदिक युगीन वर्ण व्यवस्था व आश्रम व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । पौष्टिक कर्मों के अध्ययन से वैदिक युगीन आर्थिक व्यवस्था का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । तद्युगीन आर्यों का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन था । आर्य जन कृषि की समुन्नति तथा अभीप्सित वृष्टि हेतु विविध पुष्टि कर्म सम्पादित करते थे। पशुओं की समृद्धि हेतु भी नाना विध पौष्टिक विधानों का वर्णन मिलता है ।

इसके अतिरिक्त आर्य विविध उद्योग व व्यापार भी किया करते थे।

राजकर्म सम्बन्धी पौष्टिक कर्मों से वैदिक युगीन सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। राजा व राज्य की समृद्धि हेतु अनेक पौष्टिक कर्मों का विधान ऋग्वेद से लेकर सूत्रग्रन्थों तक प्रतिपादित है। सूत्र ग्रन्थों तक वैदिक युगीन राजनीतिक व्यवस्था में हुये परिवर्तनों की झलक भी इन कर्मों के अध्ययन से मिल जाती है। इस प्रकार पौष्टिक कर्म सम्पूर्ण वैदिक संस्कृति का परिज्ञान कराने में सर्वथा सर्वदा समर्थ है।

पौष्टिक कर्म केवल अन्ध विश्वासों अथवा दैवी शक्तियों पर ही आधारित है प्रत्युत उनकी अपनी वैज्ञानिक पृष्ठ भूमि है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ये कर्म सुदृढ वैज्ञानिक आधार शिला पर प्रतिष्ठित है।

लोक विश्वासों व अन्ध विश्वासों का वर्णन प्राप्त होता है इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण वैदिक युगीन वर्ण व्यवस्था व आश्रम व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। पौष्टिक कर्मों के अध्ययन से वैदिक युगीन आर्थिक व्यवस्था का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। तद्युगीन आर्यों का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन था। आर्य जन कृषि की समुन्नति तब अभीप्सित वृष्टि हेतु विविध पुष्टि कर्म सम्पादित करते थे। पशुओं की समृद्धि हेतु भी नाना विध पौष्टिक विधानों का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त आर्य विविध उद्योग व व्यापार भी किया करते थे।

राजकर्म सम्बन्धी पौष्टिक कर्मों से वैदिक युगीन सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । राजा व राज्य की समृद्धि हेतु अनेक पौष्टिक कर्मों का विधान ऋग्वेद से लेकर सूत्रग्रन्थो तक प्रतिपादित है। सूत्र ग्रन्थों तक वैदिक युगीन राजनीतिक व्यवस्था में हुये परिवर्तनों की झलक भी इन कर्मों के अध्ययन से मिल जाती है । इस प्रकार पौष्टिक कर्म सम्पूर्ण वैदिक संस्कृति का परिज्ञान कराने में सर्वथा सर्वदा समर्थ है ।

पौष्टिक कर्म केवल अन्ध विश्वासों अथवा दैवी शक्तियों पर ही आधारित नहीं है प्रत्युत उनकी अपनी वैज्ञानिक पृष्ठभूमि है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ये कर्म सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार शिला पर प्रतिष्ठित है । पौष्टिक कर्मों के अध्ययन से तद्युगीन भैषज्य विज्ञान शल्य चिकित्सा आदि का सम्यक ज्ञान प्राप्त होता है इसके अतिरिक्त विविध रोगों एवं नाना विध औषधियों के निर्माण का भी ज्ञान प्राप्त होता है । पौष्टिक कर्मों में मानव मनो विज्ञान की स्पष्ट झलक मिलती है। प्रेतादिबाधा निवारण तथा औषधियों के बिना ही रोगों का निवारण वैदिक आर्यों की अभूत पूर्व उपलब्धि और पौष्टिक कर्मों की देन कहा जा सकता है ।

पौष्टिक कर्म आज भी उतने ही उपादेय वा प्रासंगिक है जितना कि वे वैदिक युग में थे । ऋग्वेद से लेकर सूत्र ग्रन्थों तक ही नही अपितु वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक की इस दीर्घ कालिक यात्रा में पौष्टिक कर्मों की प्रासंगिकता सतत बनी हुई है । यद्यपि उनके स्वरूप और विधान में यत्किंचित अन्तर आया है अथवा उनमें कुछ बुराइयाँ भी प्रविष्ट हो गयी है फिर भी लोक जीवन में मानव उन्हें उसी श्रद्धा के साथ स्वीकार करता है जैसे वैदिक आर्य

करते रहे होंगे इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पौष्टिक कर्म आज भी मानव के शुभ चिन्तक और कल्याणकारक कारक पद प्राप्त किये हुये है ।

यद्यपि इससे पूर्व भी पौष्टिक कर्मों पर कुछ शोध कार्य हुए है उदाहरण के लिए डा० माया मालवीया का " अथर्व वेद शान्त्यपुष्टिकर्माणि" तथा डा० हीरा लाल विश्वकर्मा का " अथर्व वेद में भैषज्य विज्ञान " विशेष रूप से उल्लेख है । इसमें प्रथम " अथर्व वेद शान्त्य पुष्टि कर्माणि" सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय तथा द्वितीय अथर्व वेद में भैषज्य विज्ञान " हिमांचल प्रदेश विश्व विद्यालय द्वारा डाक्ट्रेट उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध है । किन्तु इन दोनों ही शोध प्रबन्धों की विषय वस्तु समालोचनात्मक नहीं है ।

" अथर्व वेद शान्ति पुष्टि कर्माणि में परम विदुषी डा० माया मालवीया ने सम्पूर्ण संहिताओं एवं ब्राह्मणग्रन्थों में प्राप्त शान्ति और पुष्टि सम्बन्धी उल्लेखों के संकलन का कार्य बड़े ही परिश्रम से किया है । उनका यह संकलन अत्यन्त ही प्रशस्य है और उनके परम वैदुष्य का द्योतित करता है

किन्तु विषय विस्तार के संकोच वश उक्त ग्रन्थ में आपके द्वारा किसी भी कर्म के प्रयोग की न तो विधि का प्रतिपादन हो पाया है और न ही उन कर्मों पर किसी भी प्रकार के समीक्षात्मक व आलोचनात्मक टिप्पणी ही प्रस्तुत हो पायी है। अथर्व वेद में भैषज्य विज्ञान - इस प्रबन्ध में यद्यपि व्यापक टिप्पणियाँ की गई है किन्तु इसमें केवल अथर्व वेद में प्राप्त भैषज्य सम्बन्धी कर्मों का ही विवेचन हुआ है अतः पौष्टिक कर्मों की दृष्टि से इसकी उपादेयता अपर्याप्त प्रतीत होती है ।

इसके अतिरिक्त विविध लेखकों ने अपने ग्रन्थों में पौष्टिक

कर्मों का यत्किञ्चित टिप्पणी व विवेचन करने का प्रयास किया है किन्तु यह सभी प्रयास पौष्टिक कर्मों के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्रदान करने में नितान्त असमर्थ है ।

अपने इस शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में हमने सभी संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त पौष्टिक कर्मों का सविध आलोचनात्मक विवेचन किया है तथा उन फलों का भी निर्देश किया है जिनकी प्राप्ति तत्तत् पौष्टिक कर्मों के सम्पादन से होती है ।

इसी अध्याय में सूत्र ग्रन्थों में विवेचित पौष्टिक कर्मों का संक्षिप्त स्वरूप प्रतिपादित किया गया है ।

सूत्र ग्रन्थों में कौशिक गृह्य-सूत्र पौष्टिक कर्मों के प्रतिपादन का आकर ग्रन्थ है। इस सम्बन्ध में सुहृद्वर्य डा० शेष नारायण शुक्ल का शोध प्रबन्ध कौशिक गृह्यसूत्रस्य सामीक्षिकमध्ययनम् उपयोगी रहा है। द्वितीय अध्याय में हमने पौष्टिक कर्मों का प्रतिनिधि सूत्र ग्रन्थ मानते हुए कौशिक गृह्य-सूत्र में वर्णित विविध पौष्टिक कर्मों का परिचय देते हुए उनसे प्राप्त होने वाले फलों की आलोचनात्मक व्याख्या की है। इसी प्रकार पौष्टिक कर्मों और आभिचारिक कर्मों का अन्त: सम्बन्ध निरूपित करते हुए इस शोध प्रबन्ध को व्यापक बनाने का प्रयास किया गया है ।

पौष्टिक कर्मों के अध्ययन से तद्युगीन सांस्कृतिक तत्व भी स्पष्ट हो जाते है। पौष्टिक कर्मों के वैविध्य में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अपने आप में मौलिक प्रयास रहा है। इसमें न केवल सामाजिक आर्थिक राजनीतिक धार्मिक तत्वों का निरूपण किया गया है प्रत्युत उनकी समालोचना भी प्रस्तुत

की गई है ।

पौष्टिक कर्म केवल अन्ध विश्वासों एवं देवताओं के विश्वास पर आधारित नहीं है प्रत्युत उनमें गूढ़ वैज्ञानिक तत्वों का दर्शन होता है । इस सम्बन्ध में भी वैज्ञानिक तत्वों का निरूपण करके शोध प्रबन्ध को नितान्त मौलिक बनाने का प्रयास किया गया है ।

पौष्टिक कर्मों की आधुनिक युगीन उपादेयता इस शोध प्रबन्ध का पूर्णतया मौलिक अध्याय है। इस अध्याय में पौष्टिक कर्मों की वैदिक युग से आज तक की दीर्घ कालिक परम्परा का आलोचनात्मक निरूपण करते हुए तान्त्रिक व शाबर ग्रन्थों में प्रतिपादित प्रमुख पौष्टिक कर्मों को भी निदर्शन स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । इसके अतिरिक्त इन कर्मों में व्याप्त बुराइयों व अच्छाइयां की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए पौष्टिक कर्मों को आधुनिक युग में भी उपादेय बताया गया है ।

इस प्रकार हमारा यह प्रयास रहा है कि यह शोध प्रबन्ध जिज्ञासुओं को पौष्टिक कर्म सम्बन्धित अधिकाधिक जानकारी प्रदान कर सके तथा अध्येतागण इन कर्मों के सम्बन्ध में कुछ और मौलिक चिन्तन कर सकें साथ ही यह भी प्रयास कर रहा है कि पौष्टिक कर्म पुनः अपने दूसरे रूप में प्राणिमात्र का कल्याण कर सकें ।

पौष्टिक कर्मों में मानव कल्याण की भावना प्रधान रूप से सन्निहित है यदि यह कहा जाय कि पौष्टिक कर्मों का एक मात्र लक्ष्य मानव को स्वास्थ्य सुख, शान्ति व समृद्धि प्रदान करना है तो कोई अत्युक्ति न होगी पौष्टिक कर्म लोक जीवन में अत्यधिक लोक प्रिय है ।

आज भी लोग अनेक आपदाओं और अनेक महामारियों को निदान का एक मात्र उपाय केवल पौष्टिक कर्मों के सम्पादन को मानते है। तान्त्रिक एवं अवान्तर कालिक पौष्टिक विधान वैदिक पौष्टिक कर्मों के ही उपबृंहित अथवा सरलीकृत रूप है । अर्थात अवान्तर कालिक पौष्टिक कर्मों के उपजीव्य वैदिक पौष्टिक कर्म ही है ।

वेदों में प्रति पादित पौष्टिक कर्म मानव को मानवता का संदेश देता है । संसार में जीने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता होती है । उसी व्यक्ति का जीवन सार्थक व प्रशस्य होता है। जिसमें " सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामया: " की भावना निहित होती है । पौष्टिक कर्म भी मानव को न केवल मानव के कल्याण का अपितु प्राणि मात्र के कल्याण का उपदेश देते है ।

\- इतिशम् -

========

:- सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -:

पृ० सं० 249 - 255

ग्रन्थ सूची

अथर्ववेद — §1§ रोथ, ह्विटनी, संपादित बर्लिन 1856
§2§ सातवलेकर संपादित §सुबोधभाष्य सहित§ स्वाध्याय मण्डल पारडी , सूरत 1957
§3§ सायण भाष्य सहित, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान , होशियारपुर, 1962

ऋग्वेद संहिता — §1§ सायणभाष्य सहित, 5 भाग, वैदिक संशोधन मण्डल पूना 1933
§2§ वेंकटमाधव भाष्य लक्ष्मण स्वरूप , लाहौर 1939

तैत्तिरीय संहिता — संपा० सातवलेकर , स्वाध्याय मंडल, औंध संवत् 2013

मैत्रायणी संहिता — सातवलेकर § संपा० § स्वाध्याय मण्डल औंध 1957

सामवेद संहिता — §1§ सायण भा०स० जीवानन्द विद्यासागर कलकत्ता 1892
§2§ सातवलेकर स्वाध्याय मंडल, औंध, 1939

यजुर्वेद संहिता — सातवलेकर , स्वाध्याय मंडल, औंध 1957

अन्य मूल ग्रन्थ

ऐतरेय ब्राह्मणम् — §1§ सायणकृत वेदार्थ प्रकाश सहित, 2 भाग , संपा० काशीनाथ शास्त्री आनन्दाश्रम पूना, 1896
§2§ हिन्दी अनुवाद सहित , 3 भाग, गंगा प्रसाद उपा० प्रयाग - 1951

कौषीतकि ब्राह्मणम् §शांखायन ब्राह्मण§ — संपा० बी० लिण्डन, जेना, 1887

गोपथ ब्राह्मणम् — संपा० हरचन्द्र विद्या भूषण कलकत्ता 1870

तैत्तिरीयब्राहमणम् — §1§ सायण भा० स० राजेन्द्र लाल मित्र कलकत्ता 1862

§2§ सामशास्त्री § संपा० § मैसूर 1921

शतपथ ब्राहमणम् -§माध्यन्दिन§

§1§ सायण भा०स०,सत्यव्रत सामश्रमि ,कलकत्ता 1903-11

§2§ सायण भा०स०,वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई ,4 भाग 1940

§3§ जे० एगलिंग § आंग्ल अनुवाद§ 5 भाग, सं० 10 मैक्समूलर एफ, मूल वैदिक यन्त्रालय अजमेर सं० 1959

अथर्व वेद पञ्चपटलिका — संपा० भगवद्दत्त ,डी०ए०वी० कालेज लाहौर 1920

चरणव्यूह सूत्रम् — शौनककृत प्रकाशित 1938

बृहद्देवता — संपा० ए०ए० मैकडानेल , मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली 1965

अथर्व वेद बृहत्सर्वानुक्रमणिका — संपा० विश्वबन्धु विश्वेश्व रानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियार पुर - 1966

वैतान श्रौत सूत्रम् — संपा० विश्वबन्धु , विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान होशियारपुर - संवत् 2024

दि कौशिकसूत्र ऑफ अथर्ववेद- एं० -एम० ब्लूमफील्ड मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1972

कौशिक सूत्र दारिल भाष्यम्- संपा० एच० आर० दिवेकर आदि तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ - 1972

आश्वलायन गृह्यसूत्रम् -संपा० पुरुषोत्तम शास्त्री आनन्दाश्रम पूना- 1936

शांखायन गृह्यसूत्रम् संपा० एस०आर०सहगल मुंशीराम मनोहर लाल ओरियण्टल बुक सेलर्स एण्ड पब्लिशर्स दिल्ली - 1960

आपस्तम्बगृह्यसूत्रम् हिन्दी अनु० उमेश चन्द्र पाण्डेय चौखम्भा प्रका० 1951

वाराह गृह्यसूत्रम् संपा० तथा हिन्दी अनुवादक डा० उदय नारायण सिंह मुजफ्फर पुर 1934

द्राह्यायण गृह्य सूत्रम् सं० उदय नारायण सिंह मुजफ्फर पुर

खादिर गृह्यसूत्रम् " " "

गोभिलगृह्यसूत्रम् " " "

कौषीत किगृह्य सूत्रम् संपा० रत्न गोपाल भट्ट चौखम्भा प्रकाशन 1908

पारस्कर गृह्य सूत्रम् संपा० गोपाल शास्त्री चौखम्भा प्रकाशन 1925

वैदिक इण्डेक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स - सं० - ए०ए० मेकडानल एवं ए० बी० कीथ, प्रका० मोतीलाल बनारसीदास, 1958

वैदिक माइथॉल जी सं० ए०ए० मेकडानल , हिन्दी अनुवाद डॉ० राम कुमार राय । चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी ।

वैदिक पादानुक्रमकोष सं० विश्वबन्धु , प्रका० विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान 1958

एनुवल बिब्लियोग्राफी ऑफ इण्डोलाजी-III — वाल्यूम डॉ० गायत्री मालवीय गं० ना० झा० के० सं० वि० इलाहाबाद 1977

वैदिक बिब्लियोग्राफी — सं० आर० एन० दाण्डेकर प्रका० -भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना

चरित्रकोश — चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, संपा० श्री नारायण चतुर्वेदी नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1983

हिन्दू धर्म शास्त्र का इतिहास — लेखक- पी०वी० काणे, हिन्दी अनुवादक- अर्जुन चौबे प्रका० हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन लखनऊ।

अथर्व वेद एण्ड गोपथ ब्राह्मण — एम० ब्लूमफील्ड हिन्दी अनुवादक -डा० सूर्यकान्त चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी 1964।

अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र — ले० प्रियरत्न आर्ष प्रकाशित 1941

अथर्व वेदीय कर्मजव्याधि निरोध- — लेखक सम्पादक- केशवदेव शास्त्री, प्रका० भारतीय चतुर्धाम वेदभवन न्यास स्वदेशी हाउस कानपुर 1974

अथर्व वैदिक सिविलाइजेशन — ले० प्रो० बी० डब्ल्यू० करमबेलकर नागपुर विश्वविद्यालय 1959

प्राचीन भारतीय संस्कृति कला राजनीति धर्म, दर्शन — लेखक ईश्वरी प्रसाद शैलेन्द्र शर्मा, इलाहाबाद 1980

शब्दकल्पद्रुम — राजा राधाकान्त देव, 5 भाग, मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली - 1983

अमरकोश	सं० ए०ए० रामनाथन -अड्यार लिट्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, मद्रास 1971
संस्कृत इंग्लिश कोश	सर०एम०मोनियर विलियम ओरियण्टल पब्लिशर्स दिल्ली -6
संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे, मोती लाल बनारसीदास दिल्ली 1970
दि गृह्यसूत्राज	सं० मैक्स मूलर (एस०पी०ई०सीरीज) मोती लाल बनारसीदास 1964
दि सव यज्ञ	जे सोन्दा 1935 में एम्सटरडम से प्रकाशित
ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट्स (भाग-1)	सम्पादक जे० म्यूर (मूल संस्कृत उद्धरण)
हिन्दी अनुवादक	राम कुमार राय, प्रकाशक चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी - 1, 1965
गृह्य मन्त्र और उनका विनियोग	कृष्णलाल, चौखम्भा विश्वभारती वाराणसी
वैदिक कोश	(वैदिक नामों एवं विषयों का) डा० सूर्यकान्त बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, 1963
ऋषीज इन ऋग्वेद	रामनारायण राय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 1953
कठोपनिषद	टीकाकार भीमसेन सरस्वती प्रेस इलाहाबाद 1893ई०

हिन्दू संस्कार — डॉ० राजबली पाण्डेय वाराणसी - 1957

हिस्ट्री आफ एन्शिएंट संस्कृत लिटरेचर — एफ० मैक्समूलर, भारतीय संस्करण प्रकाशक मेजर बी०डी० बसु पाणिनीय आफिस इलाहाबाद 1926

संस्कृत वाङमय का विवेचनात्मक इतिहास — डा० सूर्यकान्त ओरियण्टल लाँगमन दिल्ली 1972

हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर — ए०ए० मैकडानल चौखम्भा विश्वभारतीय वाराणसी

शान्ति मयूख — ज्ञान दर्पण प्रेस बम्बई 1806

शान्ति कमलाकर — पूना से प्रकाशित

कर्म काण्ड प्रदीप — डॉ० करुणाकर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास बनारस संवत् 2018

निरुक्तम् — खेमराज श्री कृष्णदास वेंकटेश्वर मुद्रणालय मुद्रणालय बम्बई

अथर्व वेद शान्ति पुष्टि मर्माणि — डा० माया मालवीया वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय 1960

हिम्स आफ अथर्व वेद — एम० ब्लूम फील्ड [एस० बी० ई० सीरीज] भारतीय संस्करण मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली 1967

मनु स्मृति — सम्पादक प्राणजीवन शर्मा बम्बई 1913 ई०

चरक संहिता — सटिप्पणी विद्योतिनी " हिन्दी व्याख्या परिशिष्ट विभूषित चौखम्भा विश्वभारतीय वाराणसी

वैदिक कोश — पं० हंसराज , प्रथम संस्करण लाहौर 1926

हिन्दी विश्वकोश — सं० डा० नगेन्द्र नाथ 11 भाग

हिन्दू धर्मकोश — डा० राजबली पाण्डेय, उ० प्र० हिन्दी संस्थान लखनऊ - 1978

तन्त्र शक्ति — डा० रुद्र देव त्रिपाठी रञ्जन पब्लिकेशन्स दिल्ली 1975

तन्त्रदर्शन — श्री गोविन्द शास्त्री सर्वार्थ सिद्धि प्रकाशन नई दिल्ली 1980

लक्ष्मीतन्त्र धर्म और दर्शन — डा० अशोक कुमार कालिया, अखिल भारतीय संस्कृत परिषद - लखनऊ 1977

मन्त्र महोदधि — शुकदेव चतुर्वेदी प्राच्य प्रकाशन - वाराणसी 1981

कौशिक सूत्रस्य सामीक्षिक मध्ययनम्- डा० शेष नारायण शुक्ल [शोध प्रबन्ध] गं० ना० झा० के० सं० विद्यापीठ इलाहाबाद-1992

ऋग्वेदीयब्राह्मणग्रन्थान्तर्गतानामाख्यानानां विकास-दृष्ट्या समीक्षात्मकमध्ययनम् - डॉ दुर्गा प्रसाद [शोध प्रबन्ध] गं० ना० झा० के० सं० विद्यापीठ इलाहाबाद-1992

शतपथब्राह्मणान्तर्गतानामाख्यानानां विकास क्रम दृष्ट्या समीक्षात्मक मध्ययनम् डा० शेष नाथ द्विवेदी [शोध प्रबन्ध] गं० ना० झा० के० सं० विद्यापीठ इलाहाबाद -1991

अथर्व वेद में भैषज्य विज्ञान डा० हीरा लाल विश्वकर्मा हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय